सत्साहित्य प्रकाशन

ग्राम-समाज का नया रूप

सहकारिता

जवाहरलाल नेहरू

•

१९६४
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९६४
मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
सत्यप्रकाश गुप्ता
नवीन प्रेस, दिल्ली

प्रकाशकीय

इस पुस्तक मे श्री जवाहरलाल नेहरू के उन भाषणो का सग्रह किया गया है, जो उन्होने सन् १९५८ से लेकर सन् १९६२ के बीच सहकारिता के बारे मे दिए थे। भारत गांवो का देश है और हमारी आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा खेती-बारी पर निर्भर करता है, लेकिन दुर्भाग्य से हमारे यहां खेती आज भी उसी तरह होती है, जिस तरह पुराने जमाने मे हुआ करती थी।

इसमे सन्देह नही कि यदि हमे युग की रफ्तार के साथ चलना है और अपने देश मे समाजवादी समाज की स्थापना करनी है तो हमे अपनी खेती की पद्धति को बदलना होगा। उसकी बुनियाद सहकारिता पर रखनी होगी।

काग्रेस और सरकार दोनो ने कृषि की इस पद्धति को अपनाने पर जोर दिया है। नेहरूजी ने भी अपने इन भाषणो में इस बात पर प्रकाश डाला है। कृषि की सहकारी पद्धति के लाभो की उन्होने विस्तार से चर्चा की है, लोगो की शकाओ का समाधान किया है और अन्त मे बताया है कि हम अपने लक्ष्य की पूर्ति बिना इसके नही कर सकते।

सहकारी पद्धति के अनुसार काम आरम्भ हो गया है और पिछले कुछ वर्षों मे इस काम मे काफी प्रगति भी हुई है। जरूरी है कि यह प्रगति और तेज हो और यह तभी सभव हो सकता है जबकि लोग इस विषय को अच्छी तरह से समझे और इसे आगे बढाने मे पूरी तरह से सहायक हो।

यह पुस्तक इस दिशा का बड़ा ही उपयोगी प्रकाशन है।

इसी क्रम मे दूसरी पुस्तक शीघ्र ही निकल रही है, जिसमे पचायती राज्य की विशेषताएँ बताई गई है और पचायतो का जाल सारे देश मे फैलाने की अपील की गई है।

जो लोग खेती-बारी के काम मे लगे है, उनके लिए तो यह पुस्तक

उपयोगी है ही, उनके लिए भी लाभदायक है, जो इस काम मे रुचि रखते है ।

हमे आशा है, यह पुस्तक ग्रामीण तथा शहरी, दोनो क्षेत्रो मे चाव से पढी जायगी और सभी लोगो को इसके अध्ययन से लाभ होगा ।

—मन्त्री

विषय-सूची

सहकारिता

: १ :

सहकारिता की कल्पना

बहुत बरसो से सहकारी आन्दोलन की पूरी विचार-धारा ने मुझे अपनी तरफ खीचा है। हालाकि निजी तौर पर मै उससे सम्बन्धित नही था, किन्तु मै उसके दर्शन, सामाजिक उद्देश्य और उस तौर-तरीके से आकर्षित हुआ था, जो विभिन्न उग्र कार्य-प्रणालियो के बीच से, जिन्हे मै पूरी तरह से पसन्द नही करता, रास्ता बनाते है। हम बहुत सालो तक इस देश मे आजादी की लड़ाई लडते रहे। शुरू मे हमारा खास मकसद राजनैतिक आजादी था, लेकिन जैसे-जैसे आजादी की लडाई आगे बढी, यह साफ हो गया कि सिर्फ राजनैतिक आजादी ही काफी नही होगी। उसमे सामाजिक उद्देश्यो को भी शामिल करना होगा। हमें आर्थिक आजादी भी हासिल करनी होगी।

उसूली क्षेत्र मे बडे-बड़े वाद और आन्दोलन चले हैं और मैं यहा उनका जिक्र नही करूगा। पर एक बात को ज्यादातर लोगो ने बराबर मजूर किया है। वह यह कि आज के हालात में महज खुदगरज यानी अपनी ही इच्छाओं को पूरा करनेवाला समाज मुनासिब नही है। इसलिए राज्य ने

समाज मे अपना ही मतलब देखनेवाली प्रवृत्तियो पर अकुश लगाना शुरू किया। आज का हरेक राज्य, भले ही उसकी आर्थिक नीतियां कुछ भी हो, इन विपयो मे न सिर्फ सीधी दिलचस्पी लेता है, बल्कि मतलबी प्रवृत्तियो पर रोक भी लगाता है। वह सवको एक-सा मौका देने की कोशिश करता है—पूरे अर्थ मे नही, वल्कि मोटे तौर पर वह जुदा-जुदा समुदायो के बीच की भारी विषमताओ को कम करता है। ऐसा करने के लिए लाजिमी तौर पर राज्य को दखलन्दाजी करनी होती है। मुमकिन है, कभी-कभी यह दखलन्दाजी, कुछ लोगो की राय मे, जरूरत से ज्यादा हुई हो और इन्सान की आजादी पर कुछ ज्यादा रोक लग गई हो, लेकिन अगर हम निजी आजादी को मूल्यवान समझते है, और हममे से बहुत लोग ऐसा समझते है, तो सवाल यह उठता है कि किस तरह निजी स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए हम अपने को एक खुदगरजी समाज के शिकजे से बाहर रख सकते है—दोनो के बीच सम-तोल कायम कर सकते है? सहकारी आन्दोलन ऐसा दर्शन, ऐसी कार्य-विधि पेश करता है, जिसके जरिये ऐसी समाज-व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

स्वभावत हममे से बहुत लोगो को इस विचार ने आकर्षित किया है। कई साल पहले, मेरे खयाल से एक-चौथाई सदी या इससे भी पहले, हमारी महान् राष्ट्रीय सस्था भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने देश मे कापरेटिव कामनवेल्थ यानी सहकारी समाज कायम करने का मकसद स्वीकार किया था। हमसे अक्सर पूछा जाता है कि इसका मतलब क्या है और उसकी व्याख्या करना खासतौर से आसान नही था। जरूरी तौर पर मै

उसके आम उद्देश्यों और सामान्य विचार-धारा के बारे में बहुत-कुछ कह सकता हूं, किन्तु उसकी ठीक व्याख्या करना कुछ मुश्किल है। इसका यह मतलब नही कि यह विचार कुछ कमजोर है। असल में इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि यह विचार ऐसा कड़ा नहीं है, जिसे किसी व्याख्या के चौखटे में वन्द किया जा सके। इस सवके बावजूद यह एक अच्छा विचार है।

मैंने यह वताने के लिए यह जिक्र किया है कि किस तरह खुद राज्य के संगठन की कल्पना करते समय हमारा ध्यान सहकारी सिद्धान्त की ओर आकर्पित हुआ और हमने उसके विषय में पिछले कुछ सालो में ही नही, वल्कि कोई २० या ३० सालों या उससे भी पहले से सोचा-विचारा है। हमे ऐसे सामाजिक आदर्श की तलाश थी, जो हमारी जुदा-जुदा आकाक्षाओं को पूरा कर सके और उस तलाश ने हमें सहकारिता तक पहुचाया। अवश्य ही, हमारी मूल इच्छा राजनैतिक स्वतन्त्रता की इच्छा थी। दूसरी इच्छा सामाजिक प्रगति और सामाजिक समानता की, लोगों को अवसर की समानता मुयस्सर कराने और उस समानता के रास्ते में आने-वाले वर्ग और जात-पात के भेदों को दूर करने की थी। आपको याद होगा कि हमारे आन्दोलन, विचार-धारा और कामो की वुनियाद में यह भावना हमेशा रही है। हमने यह सव शान्तिपूर्ण ढग से करने की कोशिश की। असल मे, हमने इससे भी ज्यादा असरकारक शब्दों का प्रयोग किया कि हम 'अहिंसक तरीको' से ऐसा करेंगे।

सहकारी विचार का विकास

बहुत-से देशो ने काम के अलग-अलग दर्शनो का विकास किया है और कई तरह से उनमे समानता है, लेकिन किसी और देश ने आजतक क्रातिकारी उद्देश्यो को हासिल करने तक के लिए शान्तिपूर्ण तरीके पर जोर नही दिया। आप जानते है, हमने महात्मा गाधी की प्रेरणा से ऐसा करने की कोशिश की और हमे इसमे राजनैतिक क्षेत्र मे बडी हद तक और सामाजिक क्षेत्र मे कुछ हद तक सफलता मिली। इन जुदा-जुदा खाहिशो ने हमे धीमे-धीमे सहकारी आन्दोलन के जरिये सहकारी ढग से काम करने को उकसाया और हम सोचते है कि अखीर मे यह तरीका सारे देश पर और लोगो के जीवन पर छा जायगा। यही वजह है कि हमने आज से कोई चौथाई सदी पहले काग्रेस सविधान की धारा १ मे उसको शामिल किया। इसके बाद हमे आजादी मिली और हमारी सविधान सभा ने देश का सविधान बनाया। सविधान मे 'कापरेंटिव कामनवेल्थ' (सहकारी राष्ट्र) शब्द तो नही आया है, क्योकि, मेरे खयाल से इस तरह के कानून के लिए वह शब्द कुछ बहुत साफ नही था। लेकिन राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्तो और सविधान की भूमिका मे यह बताया गया है कि सामाजिक नीति के क्षेत्र मे हमारा क्या मकसद है। उस मकसद को हम अपने जुदा-जुदा कामो मे सहकारी ढग दाखिल करके हासिल करना चाहते है।

असल मे, इसके अलावा मुझे ठीक ढग से काम करने का और कोई तरीका नजर नही आता। एक ओर हमे भारी उद्योगो, बडे उद्योगो का विकास करना है, क्योकि हम भारी

उद्योगों की बुनियाद के बिना देश का उद्योगीकरण नही कर सकते। हम देश में औद्योगिक क्रान्ति करने के लिए तुले है। हम मौजूदा पीढी के जमाने मे वह सब हासिल कर लेना चाहते है, जिसे हासिल करने मे और देशो को कही ज्यादा समय लगा है। यही नही, हम और भी बडी क्रान्ति, यह आणविक क्रान्ति, अणु-युग की क्रान्ति, करना चाहते है। हम यह भी चाहते है और हम यह उम्मीद करते है कि हम यह क्रान्ति अपने ही तरीके से, शान्तिमय और लोकतन्त्री तरीके से, कर सकेगे और ऐसे कुछ आदर्शो को भी जिन्दा रख सकेगे, जिन्होने गुजरे जमाने मे युगों-युगो तक भारत के लोगो को प्रेरित किया है। मै लोगो के गये-गुजरे रिवाजों का जिक्र नही करता। मै उन वहुत-सी प्रथाओ का भी जिक्र नही करता, जिन्होंने पिछले सैकडो और हजारों सालों के दौरान में हमें घेर लिया है। मेरा मतलव कुछ वुनियादी आदर्शो से है, जो, मै मानता हू कि हमारे इतिहास के लम्बे जमाने में जाहिर रहे है।

हमारे पास और उपाय क्या है ? क्या राज्य सबकुछ हड़प ले ? जमीन की बात करें तो आप निजी मिल्कियत में बड़े कृषि-फार्म नही बना सकते। जाहिर है कि यह मुमकिन नही है। तब दूसरा रास्ता क्या है ? सहकारी तरीका अपनाने के अलावा और कोई रास्ता नही है। बस, उसके द्वारा ही आप आदमियो या जमातों की बड़ी जायदादे बनना रोक सकते हैं और बड़ी इकाइयो से मिलनेवाला फायदा भी हासिल कर सकते हैं, और ऐसी इकाइयां आधुनिक विज्ञान और तकनीकी शास्त्र के प्रयोग के लिए बहुत जरूरी हैं। इस तरह सहकारी कोशिश छोटी इकाइयो और आधुनिक तकनीकी शास्त्र के बीच की खाई को पाटती है। यह गुजरे जमाने की तरह ही मौजूदा जमाने मे भी महत्वपूर्ण बन गई है। सच पूछा जाय तो आज के भारत मे वह और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है, क्योकि हम सचेत होकर, जान-बूझकर, एक निश्चित लक्ष्य की ओर आगे बढ रहे हैं।

गलत दिशा

इसमें शक नही कि सहकारी आन्दोलन एक सजीव और गतिशील आन्दोलन है और उसकी अपनी समस्याएँ हैं। आपके अध्यक्ष ने उनका जिक्र किया है—यानी इस आन्दोलन में राज्य की दखलन्दाजी या उसके साथ उसके सम्बन्धो की समस्या है। आपकी वार्षिक रिपोर्ट मे उन अहम फैसलों का जिक्र है, जो तीन साल पहले किये गए थे, जब कि ग्राम ऋण सर्वेक्षण समिति नियुक्त की गई थी। समिति ने सरकार को जो रिपोर्ट दी थी, उसमे उसने यह सिफारिश

की थी कि सरकार को सहकारी आन्दोलन को प्राणवान बनाने के लिए आर्थिक और अन्य प्रकार से उसके साथ अपना सम्बन्ध ज्यादा गहरा करना चाहिए। उसके बाद समिति के उससे सम्बन्ध रखनेवाले प्रस्तावों को सरकार ने मोटे तौर पर मन्जूर कर लिया और उनपर बराबर अमल किया जा रहा है। अब मै आपके सामने एक हकीकत मंजूर करना चाहता हू। मेरा खयाल है कि सरकार ने ग्राम ऋण सर्वेक्षण समिति के कुछ फैसलो को मानकर बहुत अच्छा नही किया। मुझे इसका अफसोस है। उसके लिए दूसरों की तरह मै भी उतना ही जिम्मेदार हूं। जितना ही मैने इस बारे में सोचा है, उतना ही मैने महसूस किया है कि कुछ मामलो में ग्राम ऋण सर्वेक्षण समिति का दृष्टिकोण सही नही था और वह देश के सहकारी आन्दोलन को गलत दिशा मे धकेलने में सहायक हुआ।

यह गलत दिशा क्या थी? समिति ने हमारे लोगों को अविश्वास की निगाह से देखने की कोशिश की। उसने सोचा कि उनमे योग्यता की कमी है और वे खुद किसी काम को नही कर सकते, इसलिए सरकारी अफसरो को मदद देने के लिए आगे आना चाहिए। सरकारी धन उनकी मदद करे। अगर सरकारी धन आयगा तो उसके पीछे सरकारी अफसर भी आयगे। चूंकि छोटी सहकारी सस्थाओं के पास काफी रुपया और कार्यक्षम तकनीकी कर्मचारी नही होते, इसलिए बडे सहकारी सगठन होने चाहिएं, जिनकी सरकार शुरुआत और मदद कर सके। अब मै यह मानता हूं कि यह दृष्टिकोण गलत था, भले ही उसके पक्ष मे कुछ दलील

दी जा सके, और उसने हमारे सहकारी आन्दोलन को गलत दिशा दी। जबसे मैने यह महसूस किया, मै उसकी ओर ध्यान दिलाने की कोशिश करता आ रहा हूं और यहा इस मौके पर मै यह कहना चाहता हू कि इस दृष्टिकोण से भले ही कुछ स्थानीय और अस्थायी नतीजे हासिल किये जा सके, वह सहकारी आन्दोलन को ऐसी दिशा में धकेलता है, जो सहकारी कतई नही है और इस आन्दोलन के अबतक के विकसित तत्व-दर्शन का निषेध करता है। अगर सहकारी आन्दोलन को सरकार द्वारा प्रेरित आन्दोलन होना है और सरकारी अफसरो को उसे चलाना है, तो उससे कुछ फायदा हो सकता है—बशर्ते कि सरकारी अफसर कार्यक्षम हो, किन्तु उससे इस अर्थ मे बेहद नुकसान होगा कि लोगो को खुद अपना काम आप करने, स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरता की भावना का विकास करने और वे गलती करना चाहे तो गलती करने के भी कम मौके मिलेगे।

सहकारी संस्थाओं का आकार

दूसरा सवाल यह है कि सहकारी सस्थाओ का आकार क्या हो ? यह प्रवृत्ति दिखाई देती है कि छोटी सहकारी सस्थाओ को खत्म करके उनके स्थान पर बडे सगठन खडे किये जाय। मेरा खयाल है कि इस प्रवृत्ति को ग्राम ऋण सर्वेक्षण समिति की रिपोर्ट की दलीलो से बल मिला है। दलील यह है कि बडे सहकारी सगठनो के पास अधिक साधन होगे और वे प्रशिक्षित कर्मचारी नियुक्त कर सकेगे और इस प्रकार ज्यादा अच्छा काम कर सकेगे। मै मानता हू कि इस दलील

मे कुछ वजन है, किन्तु ये अस्थायी नतीजे हासिल करने में हम शायद स्थायी हानि कर बैठेगे । इस प्रकार का दृष्टिकोण स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता की भावना के विकास और आपसी सहयोग के रास्ते मे बाधक होगा और हर बात के लिए सरकार का मुंह ताकने की आदत को बढावा देगा, जिसे मै बिल्कुल गलत मानता हू और जो इस देश में बहुत ज्यादा चालू है ।

आप जानते है कि मै इस सरकार का हिस्सा हूं । इसके बावजूद मै महसूस करता हूं कि वह नीति नामुनासिब है, जो लोगों को हर मौके पर सरकार का मुँह ताकने को बढावा देती है, क्योकि हम देश मे स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता की भावना का विकास करना चाहते है । बेशक, सरकार को मदद देनी चाहिए, किन्तु मदद देना एक बात है और हुक्म चलाना दूसरी, और लाजमी तौर पर हुक्म चलाने की यह प्रवृत्ति ऊपर के स्तरों पर उतनी नही है, जितनी नीचे के स्तरो पर है । जितने नीचे आप जाइये, छोटा सरकारी कर्मचारी छोटा हाकिम नही, बल्कि बडा हाकिम दिखाई देगा । इसलिए मै निश्चय के साथ कहना चाहूगा कि यह प्रवृत्ति, जिसे ग्राम ऋण सर्वेक्षण समिति की रिपोर्ट ने बल दिया और जिसे बदकिस्मती से हमने सरकार की हैसियत से मजूर किया, एक बुरी प्रवृत्ति है । हमको जल्दी-से-जल्दी उससे पीछा छुड़ाना चाहिए, छोटी सहकारी सस्थाएं बनाना चाहिए, और उनमे सरकारी दखलन्दाजी नही होनी चाहिए । हा, जहां मदद की जरूरत हो, जरूर दी जाय ।

छोटे सहकारी संगठन क्यों ?

सवाल है कि छोटे सहकारी सगठन क्यो ? उसके पक्ष मे बहुत-से कारण है। सगठन जितना ही बडा होगा, उसके सदस्य एक-दूसरे को उतना ही कम जानेगे। अखीर मे, वह ऐसा सगठन नही रहेगा, जिसमे लोग एक-दूसरे को नजदीक से जानते है और आपस मे सहयोग कर सकते है। अवश्य ही, ऊचे स्तर पर अगर लोग एक-दूसरे को न जाने तो उसका ज्यादा महत्व नही, लेकिन एक गाव के भीतर लोग एक-दूसरे पर भरोसा कर सकते हैं और साथ मिलकर काम कर सकते है। इसलिए मै छोटे सहकारी सगठनो, कमोबेश ग्राम स्तरीय सहकारी सगठनो का हामी हू। एक गाव के सहकारी सगठन मे आस-पास के दो-तीन गाव और शामिल हो सकते है। बडे सगठनो का फायदा हासिल करने के लिए बडे क्षेत्र के छोटे सगठन अपना सघ बना सकते है, पर बुनियादी इकाई छोटी ही होनी चाहिए।

मैने अक्सर कहा है और यहा फिर दोहराना चाहूगा कि भारत की इमारत की नीव मे तीन खम्भे होने चाहिए : (१) ग्राम पचायत, (२) ग्राम सहकारिता और (३) ग्राम स्कूल। इन तीन खम्भो पर राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से भारत की इमारत खडी होनी चाहिए। आदतन हम ऊपर की बडी चीजो की बात सोचते है। ऊपर हमारी सर्वप्रभुता-सम्पन्न ससद है, जो कानून बनाती है और दूसरे तरीको से देश की किस्मत का फैसला करती है। लेकिन संसद का तभी महत्व है, जब वह बुनियाद मजबूत हो, जिससे वह ताकत हासिल करती है। आप ऐसी ससद की कल्पना नही कर सकते, जो बिना किसी मजबूत बुनियाद के हवा मे तैरती है

और आज भारत मे वह बुनियाद गांव में है। इसलिए ग्राम पंचायत, ग्राम सहकारिता और ग्राम स्कूल का महत्व है।

सहकारी खेती

मै मानता हूँ कि सहकारी खेती के बारे में काफी बहस-मुबाहिसा हुआ है। पहली बात यह है कि जब हम सहकारी आन्दोलन की बात करते है तो जाहिर है कि हम सिर्फ ऋण देनेवाली सहकारी संस्थाओं के बारे मे नही सोचते। ये सस्थाएं सहकारी आन्दोलन के मामूली अंग है, सहायक अग है, लेकिन महत्वपूर्ण अंग नही है। सहकारी दर्शन की दृष्टि से वे महत्वपूर्ण नही है। जरूरी तौर पर ऋण देनेवाली सहकारी संस्थाएं होनी चाहिए, पर हम चाहते है कि सहकारी कोशिशे नाना रूपो में विकसित हो, यथासम्भव अधिक-से-अधिक रूपो में, नही तो आप आधुनिक तकनीकी शास्त्र का फायदा नही उठा सकेगे। जमीन और गृह उद्योगो की छोटी इकाइयों के पास विकास के साधन नही होते। उन्हे मिलकर काम करना होगा, वरना वे ज्यादा प्रगति नहीं कर सकती। इसलिए सहकारी प्रयास हर सम्भव दिशा मे, छोटे भू-स्वामियों, कुटीर उद्योगो, उत्पादकों, उपभोक्ताओ आदि मे फैलाना चाहिए। सबसे अखीर मे मिली-जुली खेती की बारी आवेगी।

कभी-कभी दलील दी जाती है, "ओह, अगर आप मिली-जुली खेती को अपनायेगे तो वह साम्यवाद होगा।" इसके उत्तर मे यह कहने की इच्छा हो आती है, "वह कुछ भी हो, यह तर्क देनेवाले भाई मे सोचने की ताकत का, बुद्धि का अभाव है।" हमे यह तय कर लेना चाहिए कि अगर कोई

चीज अच्छी है तो हम उसे जरूर हासिल करेंगे, फिर उसका कुछ भी नाम क्यो न हो। चीज की अच्छाई-बुराई पर बहस कीजिये, किन्तु यह कहना बिल्कुल बेहूदा है, "ओह, यह असाम्यवादी है अथवा साम्यवादी है और इसलिए हम उसे नही छुएँगे।" यह शीत युद्ध है और किसी समस्या पर विचार करते समय, चाहे वह आर्थिक हो या राजनैतिक, राष्ट्रीय हो अथवा अन्तर्राष्ट्रीय, मै आशा करता हू, हम शीत युद्ध का सहारा नही लेगे। यह भी याद रखना चाहिए कि हम सहकारिता अथवा और किसी भी बारे मे जो भी कदम उठायगे, वह लोकतन्त्री चौखट मे होगा यानी उसके लिए लोगो की सद्भावना हासिल करनी होगी। हम उन्हे मजबूर नही कर सकते। अगर हम ऐसा करेगे तो हमारी सरकार अगले ही दिन उखड जायगी। हा, हम शासन को ही बदल दे, शासन की प्रणाली को ही बदल दे तो दूसरी बात है, किन्तु हमारा शासन अथवा शासन-प्रणाली को बदलने का कोई विचार या इच्छा नही है। इसलिए जो कुछ भी करना है, लोगो की सद्भावना और उनकी सहमति से करना होगा।

इस बुनियाद पर विचार करने पर मुझे जरा भी शक नही कि बहुसख्यक उदाहरणो मे सहकारी खेती मुनासिब है। फिलहाल मैं यह नही कहता कि हर मामले मे वह उचित है, क्योकि हालात जुदा-जुदा हे। मिसाल के लिए यह हो सकता है कि धान पैदा करने के लिए एक तरह की खेती की जरूरत हो और गेहू पैदा करने के लिए दूसरी तरह की। इसे अलग रखकर जहा जमीन के छोटे टुकडे हो, मेरे खयाल से उनको मिलाकर खेती करना काफी फायदेमन्द होगा। उन

टुकडो के मालिक अलग-अलग हो सकते हैं, किन्तु उनमे सामूहिक खेती हो सकती है। सिर्फ इसी तरह काफी बर्बादी को टाला जा सकता है और नाना रूपो मे तरक्की की जा सकती है। मै इसके विस्तार में नही जाऊगा, क्योकि इसे आसानी से समझा जा सकता है।

हमे कृषिक्षेत्र मे सहकारिता का व्यापक प्रसार करना होगा। वह आज सीमित है और इस दिशा मे आखरी कदम लोगों की सहमति से सहकारी अथवा मिली-जुली खेती का होगा। हम नमूने के तौर पर राजकीय कृषि-फार्म कायम कर सकते है, जहां मिली-जुली खेती की जाय। उनसे लोगो को पता चलेगा कि मिली-जुली खेती कितनी फायदे की है।

इस तरह वे और हम इन प्रयोगो से सीख सकेगे। मै किसान नही हू। मुझे कहना पड़े तो कहूगा कि मै केवल उसूल की चर्चा कर सकता हू। पर इस बारे मे सोचने और लोगों के साथ चर्चा करने से मै इस नतीजे पर पहुचा हूं कि मौजूदा हालात मे हमको देश के अधिकतर भाग मे सहकारी खेती की ओर बढना होगा।

भारत मे हम भारी काम मे जुटे है और उससे तीसरी योजना को पूरा करने मे मदद मिलेगी। दूसरी पचसाला योजना हमारी लम्बी चढाई की एक छोटी मंजिल है। हमको एक-एक कदम ऊंचा और ज्यादा ऊचा चढना होगा। यह महान काम है, क्योकि हम दसियों साल के प्रयास और कठिन काम को कही थोड़े समय मे पूरा करना चाहते है और लोकतन्त्री तरीके से करना चाहते है। हम कोशिश कर रहे है और हम अपनी ताकत के हिसाव से कोशिश करते रहेगे।

इस बीच और बाते भी हो रही है। तकनीक शास्त्र आश्चर्यजनक गति से बदल रहा है। विज्ञान गैर-मामूली रफ्तार से नई ताकत हमारे हाथों मे सौप रहा है। कुछ हद तक हमे इन घटनाओ के आगे रहना होगा। खेती को ही लीजिये। यह भी सोचिये कि अणु-शक्ति का किसी-न-किसी रूप नें, आइसोटोपो की शक्ल में, खेती मे उपयोग किया जा रहा है। इससे उत्पादन मे बड़ा अन्तर आ रहा है। जाहिर है कि हमे अपने घेरो से बाहर निकलना होगा। अगर आप गरीब किसान को अपने ही साधनो पर छोड देगे तो आप ऐसा नही कर सकेगे। बिचारा गरीब किसान अकेला क्या कर सकता है ? इसलिए आपको किसी-न-किसी आन्दोलन का सहारा लेना होगा। यह इसलिए भी जरूरी है कि बड़े जमीदारो और ताल्लुकेदारो वगैरा का हमारे लिए कोई उपयोग नही है। हमने इन वर्गो को करीब-करीब खत्म कर दिया है। इसलिए हमारे सामने सहकारी आन्दोलन का ही एक रास्ता है। सहकारिता के जरिये ही व्यक्ति, छोटा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की, अपनी आजादी की, रक्षा कर सकता है और साथ ही बड़े पैमाने पर काम कर सकता है तथा विज्ञान और तकनीक शास्त्र का फायदा उठा सकता है।

अखीर मे एक बात और। आपको हमारे सामुदायिक विकास आन्दोलन, विकास-खण्डो और राष्ट्रीय विस्तार सेवा की जानकारी है। उसकी आसानी से आलोचना की जा सकती है और यह कहा जा सकता है कि बहुत-से स्थानो मे आशा के अनुरूप नतीजा नही आया। फिर भी, यह एक उल्लेखनीय आन्दोलन है, महज भारत मे ही नही। पिछले

पाच सालो या इससे कुछ ज्यादा समय मे इस आन्दोलन ने भारत मे जो कुछ हासिल किया है, उसे मै आश्चर्यजनक मानता हूं। मै फिर कहता हू, उसमे कमजोरियां है और यह सब स्वाभाविक है, लेकिन इस आन्दोलन का भारत के भविष्य पर, खास तौर पर देहाती भारत के भविष्य पर, बड़ी हद तक असर पडेगा। वह अभी भी असर डाल रहा है। मै चाहता हू कि सहकारी आन्दोलन ज्यादा-से-ज्यादा फैले और इसलिए मै चाहता हू कि उसके और इन सामुदायिक विकास-योजनाओ और विकास-खण्डों के बीच नजदीक का तालमेल हो। मै खुद नही जानता कि यह तालमेल क्या शक्ल अख्तियार कर लेगा, लेकिन देश के इन दोनो महत्वपूर्ण आन्दोलनो को, जो नीव से निर्माण कर रहे है, कदम-से-कदम मिलाकर चलना होगा।[1]

१. भारतीय सहकारी कांग्रेस, नई दिल्ली मे १२ अप्रैल १९५८ को दिया गया भाषण।

२

"ग्रामीणों में मेरी श्रद्धा है"

मै आपको बताऊंगा कि हममे कई लोग कृषि-सुधार के इस मामले मे क्या महसूस करते रहे है। हमने जुदा-जुदा उपायो पर अलग-अलग सोचा है। एक सवाल जमीन की मालिकी की ज्यादा-से-ज्यादा हद तय करने का है और दूसरा सवाल खेती की सहकारी समितियो का है। हम अब यह महसूस करने लगे है कि ये दोनो सवाल एक-दूसरे से बहुत ही जुडे हुए है। अगर भारत मे दूसरे कुछ देशो की भाति बडे कृषि-फार्म हो तो आप इससे सहमत हो या नही, यह सोचा जा सकता है कि वे व्यवस्थित रूप से काम करेगे, काफी ज्यादा उत्पादन करेगे और आधुनिक तरीको का उपयोग कर सकेगे। भारत की बुनियादी समस्या यह है कि उसमे जमीन की इकाइया बहुत छोटी है—मामूली तौर पर मै कहू कि उनका क्षेत्र एक, दो या तीन एकड है। इन छोटी इकाइयो मे किसान सिर्फ इतना ही कर सकते है कि जैसे-तैसे खेती करते रहे और आधुनिक तरीके इस्तेमाल करने मे ज्यादा तरक्की नही कर सकते। मालिकी की अधिकतम सीमा निर्धारित करने का यह मतलब होगा कि कुछ

बड़े फार्म छोटे टुकड़ों में बाटने होंगे। इस सुधार का मंशा यही है और ऐसा होना ही चाहिए। लेकिन अगर आप तरक्की करना चाहते हैं और आधुनिक तरीके अपनाना चाहते हैं तो जमीन के इन छोटे-छोटे टुकड़ों में सहकारी खेती की जानी चाहिए, ताकि उन्हें आधुनिक तरीकों का फायदा मिल सके।

जब मैं सहकारी खेती की बात करता हूं तो मेरा मतलब यह है कि सहकार कई तरह का हो सकता है। ऋण देने-वाली सहकारी समितियां तो हैं ही। हमारे खयाल से पहला कदम ऐसी सहकारी समितियों की स्थापना होना चाहिए, जो लोगों को जैसे बीज, खाद वगैरा खरीदने का काम करें। वे किसानों के लिए जुदा-जुदा सेवाएं दे सकती हैं। अगला कदम धीमे-धीमे बिचौलियों को हटाने का हो सकता है। फिर अगले कदम की बारी आयगी और वह मिलीजुली खेती का कदम हो सकता है, भले ही उसमें अपनी-अपनी जमीनों पर किसानों का मालिकी हक कायम रहे। यह दृष्टिकोण है और मालिकी की अधिकतम सीमा तय करने का यह सवाल सहकारी संस्थाओं के निर्माण के सवाल के साथ अधिक-से-

सहकारी समिति हो और उन्हे फैसले करने की सत्ता और अधिकार दिये जाय। वे गलतिया कर सकती है और उन्हे गलतिया करने का भी हक होना चाहिए। हम जोखम उठाते है। उनकी सत्ता पर अकुश लगाने और उन्हे वेबस महसूस कराने के बजाय जोखम उठाना ज्यादा अच्छा है। जहातक मेरा खुद का ताल्लुक है, देहाती लोगो की जन्मजात समझ-दारी मे मेरी काफी श्रद्धा है। बेशक वे गलतिया करेगे। इसका महत्व नही। हम सब गलतिया करते है। लेकिन अगर आप उनमे यह भावना पैदा करते है तो उनमे आत्म-निर्भरता आयगी, वे पहल करेगे, खुद काम करने लगेगे और सरकारी अफसरो का इन्तजार नही करेगे कि वे आये और उनका काम करे।

मै फिर कहता हू कि सहकारी सस्था, जिसकी हम कल्पना करते हे, छोटी होगी, ताकि उसके सदस्यो मे निकटता हो और एक दूसरे की जानकारी हो। वह उनसे परे की चीज नही होगी। अगर सहकारी समिति के सदस्यो को यह पता हो कि उनके गाव मे कौन भला आदमी है और कौन बुरा, तो शायद वह समिति ज्यादा कामयाव होगी, बजाय इसके कि कानून की कोई पेचीदा तरकीब हो या कुछ ऐसे बडे अफसरो का हाथ हो, जो स्थानीय हालात से बिलकुल नावाकिफ हो।

आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि ग्राम-पचायतो या ग्राम सहकारी समितियो मे दलबन्दी की राजनीति ज्यादा नही होती और मेरे खयाल से उसे बढावा भी नहीं दिया जाना चाहिए। उनकी बुनियाद ही जुदा है। बडे शहरो के कारपोरेशनो (निगमो) और म्युनिसिपैलिटियो (नगर-

: ३ :

हमें मिलकर आगे बढ़ना होगा

हमे यह याद रखना होगा कि भारत मे आबादी के हिसाब से कितनी जमीन है। इस अनुपात पर बहुत-कुछ मुनहसिर करता है। आमतौर पर हमारे यहा जमीन की इकाइया बहुत छोटी है। जिन्हे जमीन की जरूरत है, अगर उनमे हम जमीन का बटवारा करने लगे तो ये इकाइया और भी छोटी हो जायगी। जमीन की इस बहुत ही छोटी इकाई मे, जो अक्सर फायदे की नही होती, आप प्रगतिशील तरीके अपनाये जाने की उम्मीद नही कर सकते। फिर करना क्या होगा ? मुझे लगता है कि एक ही रास्ता है और वह है सहकारी प्रयास। लाजिमी तौर पर राज्य की उसमे मदद होनी चाहिए। लेकिन मै अपने बहुत-से लोगो की यह आदत छुडाना चाहता हू, जो ब्रिटिश शासन-काल मे पैदा हुई है, कि कोई दूसरा आकर उनका काम कर दे। मै चाहता हू कि सहकारी समिति किसानो की सहकारी समिति हो, किसानो पर लादी गई और सरकारी अफसरो के जरिये चलाई जानेवाली राजकीय सहकारी समिति नही। मै सरकारी अफसर नही चाहता। अफसरो से मेरा बहुत साबका पड़ता है और इसलिए नही

चाहता कि वे सरकारी मशीन को लेकर देशभर में फैल जाय और इस तरह किसान की काम करने की पहल को कमजोर कर दे। मेरे खयाल से एक ही रास्ता है, कि हमारे किसानों में सहकारी भावना का विकास किया जाय, क्योकि सच्चे सहयोग से ही छोटे सहकारी संगठन खड़े हो सकेगे। एक गांव के लिए या दो-तीन गांवों के लिए एक सहकारी संगठन होना चाहिए। मुद्दा यह है कि सहकारी संस्था के सदस्य आपस मे एक-दूसरे को जाननेवाले होने चाहिएं।

कुछ लोग दलील देते है कि छोटी सहकारी संस्थाओ के साधन कम होगे। यह सही है और इसका एकमात्र उपाय यह है कि छोटी सहकारी समितियों का एक बड़ा सघ बना दिया जाय। उसका सहकारी संघ या और कोई नाम रखा जा सकता है और वह अपनी शाखाओं को खास सलाह और सहायता देगा। आप जानते है कि इन्सानो से सम्बन्ध रखनेवाली समस्या मुश्किल होती है। जब बड़ी तादाद में इन्सान इकट्ठे होते है तो समस्या और भी मुश्किल हो जाती है। खेती मे हमको सिर्फ मर्द और औरतो से ही नही, वल्कि जानवरों और पौधो से भी निपटना होगा। उनके बीच कुछ तालमेल रखना होगा। जहां थोड़ा भी असंतुलन हुआ कि सारा ढाचा गडबड़ा जाता है और योजना नाकामयाब हो जाती है।

बेशक, इनसब कठिनाइयों का सामना किया जाता है और उनपर काबू किया जाता है, लेकिन तरक्की आशा से धीमी होती है और कभी-कभी सामने मायूसी भी आ खडी होती है। हम क्यों न तेजी से आगे बढ़े? पर हमें याद रखना है कि हम कूच कर रहे है। हम अकेले या छोटे समूहों में कूच

नही कर रहे है, हमारी ३६ करोड की बिरादरी है और हम सब कुछ कर रहे है। हमे मिलकर आगे बढना होगा और हम एक-दूसरे से जुदा नही हो सकते। हमे इस प्रयास मे एक-दूसरे की मदद करनी होगी। मैं यह मानता हू कि शुरू की कठिनाई पार करने के बाद प्रगति की रफ्तार तेज होगी, क्योकि जैसा कि मैने कहा है, मुझे अपने लोगो की और अपने किसानो की समझदारी और बुद्धिमानी मे भारी श्रद्धा है।[1]

---

१ १४ नवम्बर, १९५८ के 'कुरुक्षेत्र' के एक लेख से।

: ४ :

न अचानक, न थोपा हुआ

नागपुर-काग्रेस ने दो प्रस्ताव स्वीकार किये। एक योजना के बारे मे यानी तीसरी पाचसाला योजना के बारे में और दूसरा कृपि और भूमि-सुधारो के बारे में। इससे कई महीने पहले अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक हुई और उसने विशेष समितिया कायम की—एक योजना के बारे में और दूसरी कृषि और सम्बन्धित विषयों के बारे मे। दोनो ही ऊंचे स्तर की समितिया थी। उनकी रोज-ब-रोज बैठकें हुई। काग्रेस से बाहर के खास आदमियों—अर्थशास्त्रियों और दूसरो को उन समितियो ने बुलाया और उन्होंने हर नजरिये से पूरी तरह विचार किया। जुदा-जुदा चर्चाओ, बातचीतों, काग्रेस संगठन से जारी की गई प्रश्नावलियो और उनके उत्तरो के आधार पर यह विचार हुआ। पिछले दो या तीन सालो से—हम इन विषयों पर, कृषि, भूमि-सुधारों और जमीन की मालिकी की ज्यादा-से-ज्यादा हद तय करने के बारे मे विचार करते आ रहे थे।

मिसाल के तौर पर जमीन की मालिकी की अधिकतम सीमा का सवाल ही लीजिये। साल-दर-साल इसपर विचार

किया गया और इसलिए नागपुर काग्रेस अधिवेशन के सामने यह सवाल कोई अचानक उपस्थित नही हो गया। इसपर काग्रेस कमेटी की बैठको मे सालो विचार हुआ। फिर हमने दो समितिया कायम की, जिन्होने नागपुर काग्रेस अधिवेशन के सामने अपनी रिपोर्ट पेश की। रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है। इस तरह यह सवाल आया और हमने उसपर अपनी दूसरी कमेटियो मे—काग्रेस कार्यसमिति और विषय समिति मे विस्तार से विचार किया और उनकी सिफारिशो को मुख्य रूप से स्वीकार किया।

इसलिए अगर कोई यह कहता है कि मैने दूसरो पर सही या गलत कोई चीज थोपी है तो यह मुनासिब या तथ्यो के मुताबिक नही है। मै कह सकता हू कि मेरा इन सुधारो पर गहरा विश्वास है। 'गहरे' शब्द का इस्तेमाल मै इसलिए करता हूं कि भारत की तरक्की पर भी मेरा उतना ही गहरा विश्वास है। मै राजनेता नही हू। मैं भारत मे कुछ करना चाहता हू, अपनी जिन्दगी के बाकी सालो मे भारत को बदल डालना चाहता हू, देश के किसानो को, कृषि को, अर्थ-व्यवस्था आदि को बदलना चाहता हू।

मै गलती कर सकता हू, मैने अक्सर गलतिया की है। लेकिन एक लक्ष्य पर पहुचने की मेरी तीव्र अभिलाषा है। कुछ दिन पहले 'कुछ पुरानी चिट्ठिया'[1] पुस्तक प्रकाशित हुई है और मै आपका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हू कि पिछले ३० या ४० साल से मेरा क्या दृष्टिकोण रहा है, मैने किन नीतियो की हिमायत की है। मै यह नही कहता कि एक ही बात को

१ सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।

बार-बार दोहराना कोई बहुत अच्छी बात है। दुनिया बदल रही है और लोगों को भी अपनी राय अथवा विचार बदलना चाहिए और दुनिया के साथ आगे बढना चाहिए, लेकिन यह सिर्फ यह बताने के लिए कहा है कि मैने पिछले बहुत-से सालों से इसी तरह महसूस किया है। इन सालो मे मै अनेक तरीकों से कांग्रेस के सामने अपने विचार रखता आया हू। कभी-कभी मेरे विचारो को गाधीजी पसन्द नही करते थे। वह कहते थे, "तुम्हारी रफ्तार बहुत तेज है।"

इसलिए काग्रेस ने जो कुछ किया है, वह पिछले २० सालों के सोच-विचार का नतीजा है। यह सही है या गलत, इसपर हम आगे विचार कर सकते है, लेकिन इसपर हमने लम्बा विचार और चिन्तन किया है।

सेवा सहकारी समितियां

मै यहा मिली-जुली खेती की बात नही करता, क्योंकि वह दूसरा सवाल है, पर सहकारिता काग्रेस-दृष्टिकोण की बुनियाद रही है। हमने काग्रेस के सविधान मे 'सहकारी समाज' का जिक्र किया है। हम उद्योग के क्षेत्र मे सहकारी प्रयास की बात करते है। हमने हमेशा इसकी चर्चा की है। हमने कांग्रेस के नागपुर-अधिवेशन मे यह तय किया कि तीन साल के भीतर सारे देश मे सेवा सहकारी समितियां कायम की जाय। ध्यान रखिये कि इस समय सयुक्त खेती की बात नही है, केवल सेवा सहकारी समितियों पर जोर है। दूसरे शब्दो मे, लोग अपनी जमीन अपने अधिकार मे रखते हुए, उसमें अलग खेती करते हुए, दूसरे और-और आर्थिक उद्देश्यो के लिए ग्राम सहकारी

समिति में शामिल हो सकते हैं। मैं यह कहूगा कि इस लम्बी-चौडी दुनिया मे कोई भी आदमी इस वात से असहमत नही हो सकता, वशर्ते कि वह आधुनिक दुनिया से विल्कुल अपरिचित न हो। यह प्रस्ताव इतना स्वय-सिद्ध है कि उसे चुनौती नही दी जा सकती, खास तौर पर हिन्दुस्तान जैसे देश मे, जहा जमीन की इकाइया इतनी छोटी है। अगर आप इन छोटी और अलग-अलग इकाइयो को ज्यो-की-त्यो रखते है और उन्हे सहकारी जजीर मे नही वाधते तो उनके मालिक हमेशा गरीबी और जड़ता के दलदल मे फसे रहेगे। वे उससे कभी वाहर नही निकल सकेगे। कडी मेहनत करके, सुधरे बीज काम मे लेकर और इस तरह के उपायो के जरिये वे अपनी हालत मे थोड़ा सुधार कर सकते है, लेकिन वे जैसे-तैसे पेट भरने की सतह से ऊंचे कभी नही उठ सकेगे, सचमुच अपनी कोई तरक्की नही कर सकेगे। इस स्थिति को कोई कैसे पसन्द कर सकता है? हमे इस घेरे को तोडना होगा। इसके लिए हमको बहुत-सी बाते करनी होगी। उद्योगीकरण का और इन पाचसाला योजनाओं का यही मकसद है, यानी कि लोग खेती से हटकर उद्योगो मे लगे। उद्योगो से मेरा मतलब सभी तरह के उद्योगो से है। बडे उद्योग, छोटे उद्योग, कुटीर उद्योग सभी उनमे आ जाते है। लेकिन कृषि के क्षेत्र मे, छोटी इकाइया तभी काम कर सकती है, जबकि सेवा सहकारी समितिया कायम होती हैं, और बीज, खाद और मशीने वगैरा जुटाने का काम अपने हाथ मे ले लेती है। केवल इसी तरह किसान सुधारो और आधुनिक तरीको से फायदा उठा सकेगा।

काग्रेस ने यही सेवा सहकारी समितियो की वात कही है।

यह पहला कदम है। यह भी कहा गया है कि आगे हमारा मकसद संयुक्त खेती है, पर उसके लिए सम्बन्धित लोगों की रजामन्दी आवश्यक होगी। इस प्रकार मोटे तौर पर हम तीन साल में सेवा सहकारी समितियो पर जोर देगे। इस अरसे मे अगर कोई आदमी या सहकारी समिति संयुक्त खेती की व्यवस्था करना चाहेगी तो वह ऐसा करने को आजाद होगी। इसके लिए कोई दवाब नही डाला जायगा। लेकिन जहां तक मेरा अपना ताल्लुक है, मेरा विश्वास है कि संयुक्त खेती, खासकर हिन्दुस्तान के हालात मे मुनासिब और लाभदायक चीज है।

इसलिए काग्रेस ने केवल ग्राम सहकारी सगठन को मंजूर किया है और यह याद रखने की बात है कि योजना-आयोग एक या दो साल से इसकी हिमायत करता आ रहा है। कांग्रेस ने केवल इतना और जोडा है कि लोगों की रजामन्दी से संयुक्त खेती हमारा आखिरी मकसद है।

हमने कोई खास कानून नही बनाया। हमने महज यह सुझाया है कि मौजूदा कानूनों को व्यापक बनाया जाय ताकि सहकारी समितियां बनाने में आसानी हो जाय। मिसाल के लिए अभी वही लोग सहकारी समितियो मे लिए जाते है, जिनके पास कुछ जायदाद या साधन होते है। यह बिलकुल गलत है। हम गांव के हर आदमी को सहकारी समिति मे शामिल करना चाहते है, चाहे उसके पास साधन हो या न हों। अगर हम ऐसा नहीं करेगे तो अमीर लोग ही शामिल होगे और साधनहीनों को आगे बढने का कोई मौका नही मिलेगा।[1]

---

१. नई दिल्ली मे ७ फरवरी, १९५९ की प्रेस-कान्फ्रेंस के अंश।

५.

तात्कालिक लक्ष्य

देश के लिए अनाज की स्थिति से अधिक और कोई महत्वपूर्ण समस्या नही हो सकती, यह जाहिर है। मै सदन को केवल यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि हमारी सरकार किसी भी समय खाद्य समस्या के बारे मे अचेत नही रही। यह बहुत महत्वपूर्ण मसला है और सिर्फ वही उसको नजरंदाज कर सकते है, जो अपने इर्द-गिर्द की घटनाओ से बिल्कुल बेखबर हो। इसका यह मतलब नही कि हमने जब-तब इस बारे मे या तत्सम्बन्धी प्रबन्ध मे गलती नही की है या कर नही सकते, लेकिन जैसा कि सदन को पता है, तीन बुरे साल गुजरे है और अब धान की अच्छी फसल आने और गेहू की अगली अच्छी फसल की सम्भावना के साथ हम नया मोड़ ले रहे है। हमने राजकीय व्यापार के सम्बन्ध मे और कुछ दूसरी समस्याओ, जैसे कि सहकारी समितियो के बारे मे, कुछ महत्वपूर्ण फैसले किये है और मेरा खयाल है उनका आखिरकार खाद्य-समस्या और अनाज के वितरण के कार्य के साथ गहरा सम्बन्ध है।

खाद्यान्नों का राजकीय व्यापार

जब हमने कहा कि हम थोक व्यापार को राज्य के हाथो मे लेगे तो हम इस विषय मे पक्के थे और अखीर तक पक्के रहेगे। हमने फैसला तो कर लिया, लेकिन हमारे पास मशीनरी नही थी। इसलिए हमको लाजमी तोर पर लाइसेस देने और कुछ थोक व्यापारियो को राज्य की ओर से काम करने का अधिकार देना पड़ा। यह कोई बहुत सन्तोषजनक प्रबन्ध नही है। हम सब थोक व्यापारियो पर आसानी से काबू नही कर सकते और यह जाहिर है कि उन्हे हमारी नीति मे यह परिवर्तन पसन्द नही आया। जब आप किसी इसान या समुदाय को एक नीति चलाने की जिम्मेदारी सौंपते है, जो उसकी अपनी नही है या उसके हित मे नही है तो बिला शक कठिनाइया उठ खड़ी होती है। पर इस समय हमारे पास और कोई रास्ता नही है। अगर हम अपने सहकारी सगठनों का विकास कर ले, जैसा कि हम उम्मीद करते है तो ये कठिनाइया कम होगी और अखीर मे बिल्कुल खतम हो जायगी। इसलिए इस निगाह से और दूसरी निगाहो से भी यह जरूरी है कि हम गावो मे और दूसरी जगह अपने सहकारी सगठन खड़े करे।

संयुक्त खेती

का सघ हो। हमने यह भी कहा है कि हमारा मकसद सयुक्त खेती है और हम इसे किसानो की रजामन्दी और मजूरी से ही हासिल करना चाहते है। हम सेवा सहकारिता पर जोर देगे और उसकी वजहे साफ है, जो व्यावहारिक भी है और दूसरी तरह की भी है। हमे यकीन है कि देश की आज की हालत मे जमीन की छोटी इकाइयो के होते हुए बडी इकाइयो का निर्माण जरूरी है, ताकि उन्हे आधुनिक तरीको, औजारो और साधनो का फायदा मिल सके। इसलिए निजी तौर पर मुझे यकीन है कि यह सही रास्ता है। अगर जमीन की हमारी इकाइया छोटी है तो खेती मे हम ठोस प्रगति नही कर सकते और बडी इकाइयो के लिए या तो बडे जमीदारो की जरूरत होगी या सहकारी सगठन बनाने होगे। अगर हम बडे जमीदार नही रहने दे सकते तो हमे लाजमी तौर पर सहकारी सगठनो का सहारा लेना होगा। हम उम्मीद करते है कि ये सेवा सहकारी समितिया देश-भर मे फैलेगी और यहा-वहा सयुक्त खेती भी होगी तो उसके उदाहरण और नतीजे सयुक्त खेती के पक्ष मे सबसे प्रबल तर्क सिद्ध होगे। दरअसल सदन के सदस्यो को यह जानकर अचरज होगा कि आज भारत मे कई सौ और शायद एक हजार से अधिक या करीब दो हजार सयुक्त कृषि-फार्म है। मेरे पास उनकी सफलता के आकडे नही है। लेकिन मुझे पता है कि उनमे से कुछ काफी कामयाब हुए है। दरअसल, किसानो ने ही आकर मुझे उनके बारे मे बताया है।[1]

---

१ राज्य सभा मे भाषण, १२ फरवरी, १९५९

: ६ :

सहमति से आगे बढ़ेंगे

माननीय सदस्य श्री मसानी उत्तेजित-से क्यो हो गये ? काग्रेस के नागपुर अधिवेशन द्वारा स्वीकृत कुछ प्रस्तावों से वह भडक उठे है। उनमे एक प्रस्ताव भूमि-सुधार और सहकारी समितियो के सम्बन्ध मे है। उन प्रस्तावो मे यह कहा गया है कि हमारा उद्देश्य और लक्ष्य सयुक्त खेती है और लक्ष्य यह होते हुए भी हमे फिलहाल अगले तीन सालों मे सेवा सहकारी सगठनो पर जोर देना चाहिए। यह भी जोर देकर कहा गया है कि सहकारी प्रयास स्वाभाविक रूप से स्वेच्छा से होना चाहिए और यदि सयुक्त खेती आयगी तो यह सम्बन्धित लोगो की सहमति से ही आयगी। श्री मसानी का कहना है कि वह हमेशा ही सहकारी सिद्धान्त के पक्ष में रहे है, लेकिन काग्रेस प्रस्ताव मे उसका जिस रूप से जिक्र किया गया है, उसका सहकारिता से कोई वास्ता नही है, कारण ज्योही सयुक्त खेती का विचार सामने आया कि वह सहकारी प्रयास नही रहेगा। उन्होने यह भी कहा कि अगर किसी भी मजिल पर सयुक्त खेती होगी तो उसके फलस्वरूप लाजिमी तौर पर सामूहिकवाद का जन्म होगा। यह उनकी दलील है।

सामूहिकवाद से वे हालात पैदा होगे, जो उनकी राय से रूस, चीन और दूसरी जगहो पर मौजूद है। इसलिए यह फिसलन-भरा रास्ता है, जो रसातल को ले जानेवाला है। यह उनकी दलील है और मैं उम्मीद करता हू, मैंने उसे सही-सही पेश किया है।

इस दलील मे वहुत-सी वातो को मान लिया गया है, जिनका वजूद ही नही है और इसलिए उसका जवाव देना अधिक मुश्किल नही है। वह यह मानकर चलते है कि जहां सयुक्त खेती होगी, वह सहकारी प्रयास नही रहेगा। मैंने सयुक्त खेती की कई आलोचनाएँ सुनी हैं, पर पहली वार मैंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते सुना है। वह कहते है कि सयुक्त खेती होगी तो लाजिमी तौर पर उससे सामूहिक खेती का जन्म होगा। यह भी एक अजीव वात मालूम पड़ती है। मैं खुद मोटे तौर पर सामूहिक खेती के हक मे नही हू। लेकिन मै सहकारी प्रयास मे विश्वास करता हू और मै दृढता से और पूरी तरह सयुक्त खेती के औचित्य को स्वीकार करता हूं। इसमें कोई शक नही होना चाहिए। मै हर खेत पर और हर किसान के पास जाऊगा और उसे इसे मजूर कर लेने को कहूंगा। अगर किसान इसे स्वीकार नही करते तो मैं उस पर अमल नही करा सकता। यह दूसरी वात है। मजूर उन्हे करना है। मै यह नही कहता कि इस या और किसी दूसरी समस्या के वारे मे दुनिया के हर देश मे एक ही उसूल लागू किया जा सकता है। हम व्यवहार के लिए कुछ सामान्य सिद्धान्त स्वीकार कर सकते हैं, किन्तु हर देश की परिस्थितियों और तथ्यो की वास्तविकता की रोशनी में परीक्षा

करनी होगी और किसी दूसरे देश की ऐसी बात को हम अपने यहा नही थोप सकते, जो हमारे लिए मौजूं न हो। अगर मै भारत के किसानों के लिए कोई बात पेश करता हूं तो वह इसलिए कि मै उसे यहा की परिस्थितियों मे मुनासिब और फायदेमन्द समझता हू। मै नही कह सकता कि बदलती हुई इस दुनिया मे, मै या ग्रौर कोई कुछ बरसों बाद क्या सोचेंगे, क्योकि हम तेजी से बदलते युग में रह रहे है।

श्री मसानी कहते है कि वह काम के परम्परागत तरीके में कुछ भी हेर-फेर करने के खिलाफ है। उन्होने कहा कि वह पारिवारिक खेती, व्यक्तिगत खेती के परम्परागत तरीके को जारी रखना चाहते है। मै खुद परम्परा के खिलाफ नही हूं। लेकिन हम देश मे एक बात जरूर चाहते हैं कि लोग, जहातक सम्भव हो, परम्परा के बन्धनो से मुक्त हो। हमें परम्परा की काफी मात्रा मिल चुकी है और कुछ रूपो मे हम परम्परावादी, कट्टर सिद्धातवादी और इसी तरह के वादी बन गये है और मेरा श्री मसानी से चाहे जितना मतभेद हो, मै यह नही मानता कि उस अर्थ मे वह परम्परावादी अथवा कट्टर सिद्धान्तवादी है।

लोगों की रजामन्दी

इसलिए हम इस सवाल पर उसके गुण-दोष की दृष्टि से विचार करे और यह समझे कि सहकारी क्षेत्र मे हम जो कुछ करेगे, उसके लिए सम्बन्धित लोगो की स्वेच्छिक सहमति जरूरी होगी, वरना मै श्री मसानी की इस बात से सहमत होऊगा कि वह सहकार नही होगा, और कुछ होगा। अगर

हम यह मान ले तो श्री मसानी की ज्यादातर दलीलो का खण्डन हो जाता है।

उन्होने जोर-शोर से यह भी कहा कि इस तरह की खेती के दुनिया मे कही भी अच्छे नतीजे नही निकले। इस सम्बन्ध मे भी मेरा कहना है कि इस तरह के आम बयान देना ज्यादा ठीक नही होगा। मैं उन्हे ऐसी मिसाले दे सकता हू, जहा सहकारी खेती कामयाब हुई है। श्री मसानी ने कुछ उदाहरण दिये। उन्होने हमे बताया कि यूगोस्लाविया और पोलैण्ड मे क्या हुआ? ये सामूहिक खेती की नाकामयाबी के उदाहरण है। उन्होने दो एक-दूसरे से खिलाफ बातो को एक मे मिला दिया। उन्होने उदाहरण दिया एक चीज का और उसे लागू कर दिया दूसरी चीज पर। दलील देने का यह अजीब तरीका है! पहले तो वह कहते है कि जिस सयुक्त खेती का हमने प्रस्ताव किया है, वह सामूहिक खेती है और फिर वह कहते है कि सामूहिक खेती दूसरी जगहो पर नाकामयाब रही है और इसलिए सयुक्त खेती यहा नाकामयाब होगी। इससे उनके दिमाग की उलझन जाहिर होती है।

मै यूगोस्लाविया, पोलैण्ड, रूस या चीन की परीक्षा नही कर रहा हू। मैं दूसरे देशो मे होनेवाली बहुत-सी बातों को पसन्द नही करता, कुछ दूसरी बातो को पसन्द करता हू। कभी हम समस्याओ की सगति मे अपनी राय देते है, पर मुझे हमेशा इसमे सकोच होता है, क्योंकि जबतक कोई बडे उसूल का सवाल दरपेश न हो, ईमानदारी की बात है कि मैं अपनेको दूसरे देशो का काजी बनने के लायक नही मानता। मुझे सब तथ्यों, परिस्थितियो और संयोगो की

जानकारी नही है और समाचारपत्रों या रिपोर्टो में प्रकाशित कुछ सामान्य तथ्यों के आधार पर फैसला देना ठीक नही होगा। मै नही चाहूगा कि दूसरे देशों के लोग कुछ सामान्य तथ्यो या रिपोर्टो के आधार पर मेरे देश के बारे मे राय बनाने के चक्कर में पडे। इसलिए मै नही कह सकता कि यूगोस्लाविया, पोलैण्ड, रूस या चीन सही कर रहे है या गलत। वे ही ज़्यादा ठीक जान सकते है।

भारत की स्थिति

लेकिन भारत मे हमे खास हालात का सामना करना है। हमारे यहा जमीन की औसत इकाइया बहुत छोटी है। हमारे यहा उनका औसत एक या दो एकड हो सकता है। मुझे पक्का मालूम नही है। निश्चय ही बहुत लोगों के पास एक एकड जमीन भी नही है। ऐसी हालत मे आप क्या करेंगे ? अगर हमारे यहां जमीन की इकाइयो का औसत बीस या पचास एकड हो तो बिल्कुल दूसरी बात होगी। उस दशा मे हम दूसरी तरह सोचेंगे। मै केवल नाम के लिए सयुक्त खेती या और किसी बात पर मुग्ध नही हूं। किन्तु अगर किसी आदमी के पास एक एकड या इसके आस-पास जमीन हो, और भारत मे ज्यादातर लोगों के पास इतनी ही जमीन है, तो उस जमीन से वह क्या कर सकेगा ? जरूरी तौर पर, जैसा श्री मसानी ने कहा है कि अगर हम उसे अच्छे बीज, पानी, खाद और अच्छे औजार मुहय्या करे तो वह उसे सुधार सकता है। निश्चय ही, हम उसे ये सब चीजे धीमे-धीमे दे सकते है और हमे हर हालत में देनी भी चाहिए। किन्तु

ये सब देने के बाद भी क्या होगा ? हमारे पास जमीन के बडे टुकडे हो, तो भूमि मे कुछ सुधार करके हम फायदा उठा सकते है । पर एक एकड जमीन का मालिक हमेशा अधपेट ही रहेगा । अगर मौसम कुछ अच्छा हुआ तो उसे कुछ ज्यादा खाने को मिल जायगा । पर फिर उसकी वही हालत हो जायगी । बेशक हमारे यहा इस समय खेती मे बहुत ज्यादा लोग लगे है और उन्हे दूसरे धन्धो मे लगाना होगा, उद्योगो मे लगाना होगा । उद्योग बड़े, मध्यम अथवा कुटीर हो सकते है। जमीन पर आबादी का दबाव घटाना होगा । यह सही है । पैदा-वार बढाने के लिए हर सम्भव उपाय किया जाना चाहिए, किन्तु मै कहूगा कि सैद्धान्तिक दृष्टि से या और तरह से भारत की वर्तमान परिस्थितियो मे सयुक्त खेती हमारा सही लक्ष्य होगा ।

मै फिर निश्चयपूर्वक कहता हू कि हम लोगो की रजा-मन्दी से, और किसी तरह नही, आगे बढना चाहते है और सैद्धान्तिक दृष्टि के अलावा, व्यावहारिक दृष्टि से भी आप इसी नतीजे पर पहुचेगे । मै जानता हू कि किसान पुरातन-वादी होते है और अगर मै चाहू तो भी वे अपनी आदतो को आसानी से नही बदलेगे । मुझे उनके सामने कामयाबी की मिसाले रखनी होगी, भाषण नही देना होगा । अगर मै उनसे कहूगा कि आपके पड़ोसी इसमे कामयाब हुए है तो और किसी बात की निस्बत इससे उन्हे ज्यादा यकीन होगा । इस तरह, आखिरकार यह सवाल भारत के किसानो के हाथो मे है, न मेरे हाथो मे है और न श्री मसानी के हाथो मे । मै उन्हे

किसी कार्यक्रम की अच्छाई के बारे मे यकीन दिलाने की पूरी कोशिश ही कर सकता हू ।

किसानों को पूरा समय दीजिये

इस बीच, जब हम यह कहते है कि अगले तीन बरसों में हमें सेवा सहकारी सस्थाओ के निर्माण पर शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए तो इसीसे जाहिर है कि हम इस बारे मे जल्दबाजी नही कर रहे है। किसानो को पूरा समय दीजिये । उनके लिए सेवा सहकारी समितिया सगठित कीजिये । ससद कोई कानून बनाने नही जा रही है। अगर वे खुद परिवर्तन करना चाहेगे तो उन्हे कौन रोक सकेगा ? सचमुच, मै आपसे पूछता हू, आज भी किसी सहकारी समिति को सयुक्त खेती करने से कौन रोक सकता है ? कोई भी नही रोक सकता । दबाव डालने का तो कोई सवाल ही नही है। कोई नया कानून बनाने का भी सवाल नही है । समाज खुद ही काम को करने का फैसला करता है ।

सहकारी समितियों की मौजूदा हालत

सहकारी समितियो की मौजूदा हालत के बारे मे मैं कुछ तथ्य देना चाहूंगा । छोटी ग्राम सहकारी समितियों के बारे मे कुछ तथ्य ये है। सन् १९५०-५१ के अखीर मे इन समितियो की सख्या १,१३,००० थी और सन् १९५६-५७ के अखीर में १,५९,०००। सन् १९५८-५९ के अखीर में यह संख्या १,७९,००० थी। ये ग्राम सहकारी समितिया है, बड़ी सहकारी समितिया नही। ग्राम सहकारी समितियो की सदस्य-

सख्या सन् १९५०-५१ मे ५१॥ लाख, सन् १९५६-५७ मे ९१ लाख, सन् १९५७-५८ मे ११० लाख थी। सन् १९५८-५९ का अनुमान १३८ लाख का है।

बडी सहकारी समितियो को ले तो सन् १९५६-५७ के अखीर मे उनकी सख्या १,९१५, सन् १९५७-५८ मे ४, ५२९ और सन् १९५८-५९ मे ६,३१८ थी।

माननीय सदस्य यह जानना चाहेगे कि इन सहकारी समितियो ने ग्राम ऋण की कितनी रकम दी है। मै यह कह दू कि उसका ८० फीसदी ग्राम सहकारी समितियो ने दिया है। बड़ी समितियो ने केवल २० फीसदी दिया है। सन् १९५०-५१ मे यह रकम २२ ९ करोड, सन् १९५५-५६ मे ४९ ६२ करोड, सन् १९५६-५७ मे ६३.३ करोड, सन् १९५७-५८ मे ९६ करोड और सन् १९५८-५९ मे १८० करोड रुपये थी। इस सबसे सहकारी समितियो की, खासकर छोटी सहकारी समितियो की, ठोस प्रगति का पता चलता है।

सयुक्त सहकारी खेती की बात करे तो सन् १९५७-५८ के अखीर मे भारत मे २००० सहकारी खेती समितिया थी, लेकिन मैं यह कहना चाहूगा कि यहा 'सहकारी खेती' का शब्द कुछ लचीले तौर पर काम मे लिया गया है। कभी-कभी जमीन सहकारी समिति की होती है, मिलकियत भी समिति की होती है और उस जमीन मे खेती निजी रूप से की जाती है। अगर इस श्रेणी की सहकारी खेती समितियो को अलग कर दे, तो सयुक्त और सामूहिक खेती करनेवाली सस्थाओ की सख्या १,३५७ है। उनमे सयुक्त खेती की सस्थाए ९६६ और सामूहिक खेती की सस्थाए ३९१ है।

मै नही कहता कि ये १३०० और कुछ संस्थाएं बहुत अच्छी या बहुत कामयाब या आदर्श सयुक्त खेती करनेवाली सस्थाए है। लेकिन हर राज्य में कामयाब सयुक्त सहकारी खेती संस्थाएं मिलेगी। उनकी सख्या पिछले दो-तीन सालो में बढी है। किसीके दवाव से ऐसा नही हुआ है, बल्कि किसानों ने बहुत-सी वजहो से खुद ही उन्हे अपनाया है। योजना-आयोग के कार्यक्रम-मूल्याकन-सगठन की एक रिपोर्ट ढाई साल पहले प्रकाशित हुई है, जिसका शीर्षक है 'सहकारी खेती का अध्ययन'। इस रिपोर्ट मे इन सस्थाओ का अलग-अलग मूल्याकन किया गया है। योजना-आयोग अव और नये अध्ययन करा रहा है।

एक और सवाल है, जिसके बारे मे कुछ लोगो ने कुछ शक जाहिर किया है। जमीन की मालिकी की ज्यादा-से-ज्यादा सीमा तय करने की कुछ आलोचना की गई है। इस सवाल पर इस सदन में नही, वल्कि उसके वाहर और काग्रेस सगठन मे तो कई साल और योजना-आयोग मे भी चर्चा हुई है। माननीय सदस्यों को पता है कि योजना-आयोग ने उसकी बार-वार सिफारिश की है। दरअसल, कुछ राज्यो ने इस वारे मे क़दम भी उठाये है।

मैं इस मुद्दे पर जोर देना चाहता हू कि सहकारी खेती या जमीन की मालिकी की अधिकतम सीमा के वारे में ये फैसले अचानक नही किये गए हैं। इन सवालों पर सालों वहस-मुवाहसा हुआ है। दरअसल, हमारी इस बात के लिए आलोचना हुई है और वह शायद सही भी है कि हम इस दिशा मे वहुत धीमे चले है। जो हो, उनपर सोच-विचार किया गया, खास समितिया नियुक्त की गई, जिनके सदस्यो मे कांग्रेसियो

को और प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियो को शामिल किया गया। इन समितियो ने सिफारिशे की और उनपर फिर चर्चा हुई। इस तरह जो फैसले किये गए है, उनके पहले काफी चर्चाए हुई हैं और सवाल के हर पहलू पर सोच-विचार किया गया है।[1]

---

१. लोक सभा मे दिये गए भाषण से—१९ फरवरी, १९५९

: ७ :

दलगत राजनीति से अलग

काग्रेस द्वारा निर्धारित कृषि-नीति को अमल मे लाने में कोई समूह, दल या व्यक्ति सहयोग दे तो उसका स्वागत है। हम नीतिश्रो पर चलते है, इन्सानों या समूहों के आधार पर नही। इसलिए इसी नीति पर अमल खासतौर से गावो में या श्रौर भी निचली सतह पर करना होगा, और वहां हम दलगत राजनीति का प्रवेश नही चाहते। उससे गरीब ग्रामीण उलझन में पड़ जायगा।

हमारा मौजूदा कार्यक्रम मोटे तौर पर यह है कि जमीन की मालिकी को अधिकतम सीमा तय की जाय, ग्राम सहकारी समितिया और सेवा सहकारी समितिया कायम की जाय, आगे जाकर हम गाव की सतह पर सहकारी खेती शुरू करना चाहते है। इसमे हम सभी तरह के सहयोग का स्वागत करेगे।

गाव मे कौन-से सगठन काम करते है? वहा ग्राम पचायत है, ग्राम सहकारी समिति है या होनी चाहिए। सामुदायिक बिकास खण्ड है। गाव की सतह पर ये खास संगठन है। हम नही चाहते कि इन संगठनो मे कोई दल दलो की हैसियत से

भाग ले। वहां पूरे सहयोग के लिए दरवाजा खुला है। उसके ऊपर भी सामुदायिक विकास-खण्ड-सलाहकार-समितियां हैं, जो विकास-खण्ड के ऊपर भी है।[1]

---

१. नई दिल्ली की प्रेस कान्फ्रेंस से। ६ मार्च १९५९

: ८ :

सामूहिक खेती का हौआ

हमने हाल मे सहकारी खेती का लक्ष्य स्वीकार किया है। लोग जब चाहेगे तभी उसपर अमल किया जायगा। जमीन की मालिकी की अधिकतम सीमा के बारे मे और अनाज के थोक व्यापार के बारे में फैसले किये है। आप कहते है कि उसका काफी जबानी विरोध हुआ है। मैने इस विरोध को दिलचस्पी से देखा है, क्योकि उसका पाच फीसदी तर्कसगत है और ९५ फीसदी के पीछे जज़बाती जोश है। उस विरोध के शब्दों मे आवेश और क्रोध है। जब मै ये तर्क-कुतर्क पढ़ता हू तो सोचता हू कि उस निहित स्वार्थ से बड़ा आवेश दूसरा नही हो सकता, जो अपने भविष्य के विषय मे चिन्तित हो।

कुछ लोगो ने इन उद्देश्यों की जिस तरह चर्चा की है, उससे कम-से-कम मुझे बहुत ही गैर-मामूली तजुरबा हुआ है और दूसरों को भी हो सकता है। बेशक, हर सवाल के दो पहलू होते है। लेकिन इसके अलावा, यह सहकारिता है क्या चीज ? क्या यह भीषण क्रान्ति है, कोई क्रान्तिकारी शब्द है, जिसने लोगो के दिमागो को इतना परेशान कर डाला है ? मेरा यह ख्याल था कि आज दुनिया मे सहकारिता के उसूल

को सब लोग मजूर करते है। इसमे कोई शक नही हो सकता। भारत मे भी, भले ही हम पिछडे हुए हो, सहकारी क्षेत्र मे हमने काफी प्रगति की है।

आप अपने भाषण मे सुझाव देते है—"सहकारी खेती की कुछ नमूने की योजनाए शुरू कर देखिये।" मुझे ताज्जुब है कि आप कहते क्या है और भारत मे अबतक इस विषय मे जो कुछ हो चुका है, उसे देखने की आपने तकलीफ गवारा की है या नही। उस दिन मैने ससद मे भी कुछ आकडे दिये थे और अबतक बिना किसी बडे प्रयास के इस दिशा मे जो काम हुआ है, उसकी ओर आपका ध्यान खीचता हू। यह भले ही काफी न हो, लेकिन काफी उल्लेखनीय है। यह सही है कि पुराने जमाने मे सहकारी समितिया खासतौर पर ऋण देनेवाली सहकारी समितिया होती थी, पर अब हम सेवा बहुद्देश्यीय सहकारी समितियो की बात करते है।

आपको यह जानकर अचरज होगा कि देश मे सैकडो सहकारी खेती की सस्थाए कायम हो चुकी है और ये बिना किसी सरकारी कोशिश के कायम हुई है। लोगो ने, किसानो ने, उनका गठन किया है। फिर भी सहकारी समितियो की इस तरह चर्चा की जाती है, मानो वे कोई बहुत खतरनाक और हैरतअगेज सस्थाए है और उनको महज छू लेने से सामूहिक खेती की भयकर व्यवस्था जन्म ले लेगी, और सामूहिक खेती को और भी ज्यादा भीषण चीज—साम्यवाद की निशानी—माना जा रहा है।

वाद-विरोधी

हम इस तरह नही सोचते और मै यह साफ कह देना चाहता हू कि हम साम्यवाद के खिलाफ नही है और पूजीवाद के भी खिलाफ नही है। मै इस नजरिये का विरोधी हूं और मेरा जैसा दिमाग है, उसमें अगर मेरे सामने कोई यह नजरिया रखता है तो वह मुझे उस दिशा मे जाने को बढावा देता है, जिस दिशा मे वह मुझे जाने से रोकना चाहता है। किसी भी जिदा-आदमी की यही स्वाभाविक प्रतिक्रिया होगी। मै अपने देश की राजनीति में वाद-विरोधी धन्धा समझ नही पाता, जो आज की दुनिया में इतना ज्यादा चल रहा है।

लोग कहते है कि एशिया मे, भारत और चीन मे तेज होड़ है। मेरे मन मे तो चीन के साथ होड करने की कोई भावना नही है। मै नहीं जानता, किन्तु मुमकिन है, हमारे मकसद बिलकुल समान न हों। कुछ हद तक वे समान है—यानी हम जिन्दगी के स्तर को ऊंचा उठाना चाहते है। कुछ हद तक उनमे भेद है। जो हो, मेरे मन मे होड़ की भावना नही है। दूसरों को अपने देश मे जो कुछ करना हो, शौक से करे। उसका विचार करना मेरा काम नही है। मैं उनसे सीख सकता हूं, सीखूगा। अपने देश के लोग क्या चाहते है, वही मै करूंगा और अगर कोई हमसे कुछ सीखना चाहे तो उसके लिए हमारे दरवाजे खुले है।

यह नज़रिया ही गलत है कि हम इस देश के ख़िलाफ है और उस देश के साथ हमारी होड़ है। मैं इसे अन्तर्राष्ट्रीय निगाह से और राष्ट्रीय निगाह से गलत समझता हू। किसी

ने मुझसे कहा कि सहकारी खेती सामूहिक खेती का रूप ले लेगी और उससे साम्यवाद आ जायगा। मै कहता हू कि मै इससे नही डरता। मै नही समझता कि क्यो लोगो को डराने के लिए आदमी इस तरह शब्दो को उछालते रहते है!

मै सामूहिक खेती को पसन्द नही करता। जहातक मै देख सकता हू, मै नही समझता कि वह हमारे देश के लिए मौजू है या हो सकती है। हम उसपर अमल नही करेगे। लेकिन फिर भी हमारे यहा कुछ सामूहिक फार्म है। हमारा देश बहुत बडा है और उसमे भाति-भाति की विविधताए है और हम सबको सहन करते है। किसी भी सरकारी तन्त्र ने दबाव नही डाला है। कुछ किसानो ने उसका इस्तैमाल करने की इच्छा जाहिर का है।

जो हो, सहकारी फार्म हमारे मकसद है और देश की आज की हालत को देखते मौजू है। हमारे यहा की जमीन की इकाइया बहुत छोटी है। मै दूसरे देशो को सलाह नही देता कि उन्हे क्या करना चाहिए। उनको अपने हालात, अपनी आर्थिक प्रगति और अपने जटिल वातावरण को ध्यान मे रख-कर काम करना होगा। हमको—मुझे और आपको—अपने देश के हालात के मुताबिक चलना होगा।

जमीन की छोटी इकाइयां

भारत मे जमीन की इकाइया बहुत छोटी है। औसत इकाई एक एकड़ या उससे कुछ ज्यादा होगी। ऐसी हालत मे आप क्या करेगे? हमारे किसान किस तरह तरक्की कर सकेगे? उन्हे अच्छे बीज, अच्छे खाद आदि देकर आप उनकी

चाहे जितनी मदद करे, उसका बड़ा नतीजा नही निकलेगा। बेशक, वे कुछ तरक्की करेगे, किन्तु गरीबी की चक्की से कभी बाहर नही आ पायंगे। मै ऐसे भविष्य की कल्पना करने के लिए तैयार नही हू, जिसमे हमारे देश के बहुसख्यक किसान जैसी-तैसी जिन्दगी बसर करे। इसके बजाय मै अपने यहां लाखो क्रान्तियो का स्वागत करूंगा।

हम यह बुनियादी बात याद रखे और किसी भी प्रकार के हौओं से डरे नही। सबसे बड़ी और सबसे ज्यादा डरानेवाली चीज भारत की गरीबी है, जिससे कि करोडो इन्सान पीड़ित है। चाहे जिस क्षेत्र मे हम जो भी कोशिश करे, हमे इस चीज को याद रखना होगा। हम महसूस करते है कि हम गरीबी का जल्दी-से, अचानक खात्मा नही कर सकते। उनका खात्मा करने मे हमारी पीढिया गुजर जायंगी, लेकिन हमे उस दिशा मे आगे बढना होगा।

बेशक, जमीन पर बहुत ज्यादा आदमी निर्भर करते है। जमीन पर दबाव कम करना होगा और हमे लोगो को उद्योगों मे—बडे, बीच के, छोटे और कुटीर उद्योगो मे लगाना होगा। मेरे खयाल मे यह किया जा सकता है और किया जायगा और हमारी रफ्तार बहुत धीमी होने की जरूरत नही।

दबाव नहीं

असल बात यह है कि जमीन पर सहकारी ढंग से खेती करनी होगी। हम नही कहते कि हम सहकारी खेती से शुरुआत करे। ऐसा कुछ नही है। हमने कहा है कि हमे देशभर मे सेवा सहकारी समितियां कायम कर देनी चाहिए। हमारा

सुझाव है कि तीन साल मे यह काम खत्म कर लिया जाय। हमारे देश मे वडे-छोटे कोई साढे पाच लाख गाव है। अन्दाज है कि हमे दो लाख सेवा सहकारी समितिया वनानी होगी। वजह यह है कि कुछ गाव वहुत छोटे है। यह सख्या कोई वहुत डरानेवाली नही है। जब ये सेवा सहकारी समितिया काम करने लगेगी, तव लोग सहकारी खेती अपनाने के लिए आजाद होगे। हम इसके लिए कानून नही वनाना चाहते, कोई दवाव नही डालना चाहते। लोग खुद फैसला करे या हो सकता है कि हम जाकर उन्हे खुद फैसला करने को वढावा दे, यह अलग वात है। यह हमारा अधिकार है और हम जरूर ऐसा करेगे।

फिर यह शोर-गुल क्यो ? मानो कोई वहुत ही गलत काम हो गया है, जिससे लोगो का भारी नुकसान हो जायगा। मेरी समझ मे यह वात नही आती। क्या हमारी विवेक और तर्क-शक्ति गायव हो गई है और हम डरते है कि कोई हमारा पांव कुचल देगा या हमारे निहित स्वार्थ को धक्का पहुचा देगा और यह निहित स्वार्थ हमारे शरीर के अग से भी कोमल है। कोई भी निहित स्वार्थ, जो अपने देशवासियो के रास्ते मे आता है, दुनिया मे और भी कम टिका रह सकता है। हम किसीके हिस्से पर चोट नही करना चाहते, पर यह याद रखने की वात है कि आज भारत मे सम्पत्ति की विषमता काफी अधिक है। जव हम लोगो की खर्च करने की ताकत का अन्तर देखते है तो भोग-विलास और तड़क-भडक पर होनेवाला खर्च खटकता है। कोई भी देश और खासकर राजनैतिक दृष्टि से लोकतन्त्री देश, यह सब कैसे वर्दाश्त कर

सकता है? इसीलिए जमीन की मालिकी की ज्यादा-से-ज्यादा सीमा तय करने या अनाज का राजकीय व्यापार शुरू करने आदि की जरूरत है।

जमीन की मालिकी की हदबन्दी एक मामूली सुधार है। मैं सहकारी खेती के सवाल पर बहस कर सकता हू। यह वाकया है कि जुदा-जुदा देशों मे सामूहिक खेती हो रही है। मेरे खयाल में वह कनाडा मे काफी पैमाने पर हो रही है, लेकिन कनाडा समूहवाद की ओर नही जा रहा है। लोग ये बाते नही जानते।

सहकारी समितियों के बारे में एक अहम मुद्दा यह है कि अगर सहकारी आन्दोलन को भारत में सफल होना है तो उसके पहले सावधानी के साथ शिक्षण और प्रशिक्षण देना होगा। महज यह कहने से काम नही चलेगा कि 'सहकारी समिति बना दो और गांव के लोगो को उसे चलाने दो।' मैं मजूर करता हू कि हमने प्रशिक्षण पर काफी ध्यान नही दिया है। हमें लोगों को सावधानी से प्रशिक्षण देना होगा। यह काम हमे पूरा करना है और जिस हद तक हम लोगों को प्रशिक्षित कर सकेंगे, उसी हद तक सहकारी आन्दोलन सफल होगा।[1]

---

१ वाणिज्य व्यापार मण्डल के वार्षिक अधिवेशन के उद्घाटन-भाषण से, ७ मार्च १९५९

. ६

ग्राम-समाज का नया रूप

मै इस बात पर सन्तोष प्रकट करना चाहूगा कि सहकारिता और सहकारी खेती का सदन के कुछ सदस्यो ने और उसके बाहर कुछ लोगो ने तेज और आक्रामक विरोध किया है। दरअसल, यह अफसोस की ही बात होती, अगर इस तरह के कदम को चुपचाप और बिना सोचे-विचारे मान लिया जाता।

मै इसका स्वागत करता हू, क्योकि हम चाहते है कि इस विषय को समझा जाय, उसे जानदार विपय माना जाय और दूसरी बातो की तरह मानकर भुला न दिया जाय।

मुझे मानना होगा कि मै भली प्रकार समझ नही पाया हू कि सहकारी खेती का विरोध क्यो और किस बुनियाद पर किया जाता है। बेशक, मै तर्क-रहित आवेश, पूर्वाग्रह, अज्ञात चीज को न समझ पाने की कठिनाई और हर नई चीज के डर को समझ सकता हू। कोई भी कदम आगे उठाते समय इनका हमेशा सामना करना ही पडता है। लेकिन पूरी कोशिश करने के बावजूद सहकारिता और सहकारी खेती के खिलाफ दी जानेवाली दलीलो और कारणो को मै समझ नही पाया हू।

हम क्या चाहते है ? मोटे तौर पर कहे तो हम अपने देशवासियो के रहन-सहन की सतह ऊची उठाना चाहते है,

पैदावार बढाना चाहते है, ताकि जमीन उससे सम्बन्ध रखने-वाले लोगो और देश को पहले से ज्यादा फायदा पहुंचा सके। हम ज्यादा अच्छा सामाजिक संगठन बनाना चाहते है—ऐसा संगठन, जो हमारे उद्देश्यों को पूरा कर सके। इस सवाल को हल करने के दो रास्ते है : भावात्मक और नकारात्मक। हम नकारात्मक उपाय का विचार करे, क्योंकि माननीय सदस्य इस विचार का जो विरोध करते है, उनका दृष्टिकोण नकारात्मक है।

नकारात्मक दृष्टिकोण यह है—यह काम मत कीजिये। वह खतरनाक है। लोग उसे पसन्द नही करेगे और गड़बड़ होगी। कभी यह भी कहा जाता है कि उससे पैदावार घट जायगी। अगर किसी कदम के फलस्वरूप पैदावार घटती है तो वह गलत कदम होगा। इसमे दलील की गुजाइश नही, क्योकि हम पैदावार बढाना चाहते है।

अगर हम कोई कदम नही उठाते तो हमारी कृषि-अर्थ-व्यवस्था का क्या हाल होगा? हमारे यहां ऐसे किसान है, जिन्हे सिर्फ जिन्दा रहने के लिए बड़ी कशमकश करनी पड़ती है, कुछकी हालत कुछ अच्छी होगी तो कुछ की बदतर। खराब मौसम आया और किसानो की कमर टूट जाती है।

यह सोचने की बात है कि इसका नतीजा क्या होता है। हालात ज्यो-के-त्यो बनाये रखने का यह अर्थ होगा कि आप किसानों और देश की गरीबी को हमेशा के लिए रखना चाहते है। मुझे यकीन है कि इस नतीजे को कोई भी जान-बूझकर मजूर नही करेगा। हा, बिना सोचे-समझे किया जा सकता है, जैसाकि कुछ माननीय सदस्यो ने कर लिया मालूम देता है,

लेकिन विचारशील लोग इसे स्वीकार नही करेगे, क्योकि हम सब तरक्की करना चाहते है। इसलिए हम हालात ज्यो-के-त्यो बने नही रहने दे सकते। हम यह मजूर नही कर सकते कि भारत गरीब बना रहे या हमारे किसानो की गरीबी जारी रहे।

मुझे जरा भी शक नही है कि सहकारी समितियो का रास्ता सही है और सहकारी खेती हमारा सही मकसद हो सकती है। बेशक, कुछ आलोचना मुनासिब हो सकती है और कुछ सवाल उठ सकते है। यह सवाल पूछा जा सकता है कि इस समय भारत के सब हिस्सो मे हालात सहकारी खेती के कहातक अनुकूल है? कोई यह भी कह सकता है, और सही तौर से कह सकता है कि 'बिना काफी प्रशिक्षण दिये, बिना प्रशिक्षित आदमियो के, आप सहकारी खेती नही करा सकते। यह नही हो सकता कि उसके हक मे कानून बना दिया जाय और उसके बाद सबकुछ अपने-आप होने लगे।' यह सही आलोचना है और हम लोगो को प्रशिक्षण देकर और आवश्यकता के अनुकूल वातावरण बनाकर उसका उत्तर दे सकते है। यह इस समस्या के बारे मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण होगा। लेकिन महज यह कहने से काम न चलेगा कि सहकारी समितिया या सहकारी खेती मौजू नही है, क्योकि वे नई चीजे है और भारतीय जनता की प्रतिभा के विरुद्ध है और इसलिए हम उन्हे नही अपनायगे। इसका कोई मतलब नही। यह अवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। अगर आप उसे मान लेते है तो हमेशा गरीबी मे डूबे रहना मजूर कर लेते है, क्योकि नया कदम उठाये बिना आप कभी आगे नही बढ सकते।

इसके विपरीत, यह कहना भी सही नही होगा कि सहकारी खेती अच्छी है और कल ही हमें सब जगह उसे अपना लेना चाहिए, क्योकि ऐसा करना मुश्किल होगा। मै मानता हूं कि यह व्यावहारिक नही होगा। हमको भूमिका तैयार करनी होगी, लोगों का दिमाग बनाना होगा, हमे उनको अपने अनुकूल बनाना होगा।

स्वेच्छिक स्वीकृति

कुछ हल्कों मे स्वेच्छिक स्वीकृति का सवाल उठाया गया है। यह भी एक अजीब सवाल है। जबतक हमारा सविधान अपने मौजूदा रूप मे बना हुआ है, यह काम लोगों की स्वेच्छिक स्वीकृति से ही हो सकता है। अगर संविधान टूट जाय अथवा बदल जाय तो उसके बाद मै नही जानता कि क्या होगा, लेकिन जबतक हमारा लोकतन्त्री सविधान बना है, ये आशंकाएं और डर बे-बुनियाद है। मै एक कदम और आगे जाऊंगा। देश की वर्तमान दशा मे, एक विशाल देश मे, दबाव के तरीकों से इस प्रकार का परिवर्तन करना कठिन होगा, मै कहता हूं, करीब-करीब नामुमकिन होगा। आप ऐसा कर नही सकते। आप कानून बना सकते है, लेकिन आपको लोगों से उस कानून पर अमल कराना होगा, सैकड़ों और लाखो आदमियो से अमल कराना होगा, नही तो आप कामयाब नही होगे, भले ही आप कुछ हद तक दवाव भी क्यो न डाले।

इसके खिलाफ, यह कहना मुझे बिल्कुल बेहूदा लगता है कि एक किसान सारे गांव को रोककर रख सकता है और

उसे आगे बढने नही दे सकता । मै इस हालत को स्वीकार नही करता । मै यह बिल्कुल साफ कर देना चाहता हू । अगर आप यह हालत मजूर कर लेते है तो फिर इस ससद मे या किसी ग्राम-पचायत या ग्राम-सरकारी समिति मे कोई भी कानून-कायदा नही बन सकेगा । यह नामुमकिन है । अगर ग्राम-सहकारी समिति कोई काम करना चाहती है और एक आदमी कहता है—'मै नही करने दूगा', तो ग्राम-सहकारी समिति बेबस हो जायगी । इस तरह कोई सहकारी समिति नही चल सकती, कोई पचायत काम नही कर सकती, कोई विधान-सभा नही चल सकती। लोकतत्र का यह मतलब नही कि एक आदमी सारे समाज का रास्ता रोक दे । इस प्रकार बुनियादी बात यह है कि सहकारी खेती पर तभी अमल होगा जब आम तौर पर लोग उसे स्वीकार करने को राजी होगे ।

मै यह बिल्कुल साफ कर देना चाहता हू कि अगर हम किसी नीति को सही समझते है तो हम उस नीति को स्वीकार कराने के लिए पूरा प्रोत्साहन देगे, किन्तु दबाव नही डालेगे। हम बढावा अवश्य देगे। हम अच्छा काम करनेवालो को बार-बार सम्मान देगे । अच्छे कार्यकर्ता को ज्यादा मजदूरी देकर हम उसका सम्मान करते है । वह पैदावार बढायगा और हम उसे ज्यादा मजदूरी देंगे । इस प्रकार का बढावा आप हमेशा देते है । दरअसल, मै इस प्रकार की पद्धति सभी कार-खानो, कृषि-फार्मो, संयत्रो और राजकीय सेवाओ मे नही दाखिल करना चाहूगा, क्योकि वहा सबकुछ समय के पैमाने से नापा जाता है ।

भारत के हालात

मै सदन से कहना चाहता हू कि इन सवालों पर सोच-विचार करते समय शायद हम थोडे भटक जाते है। मै यह पूरे आदर के साथ कहता हू। हम सवाल पूछते है—यूगोस्लाविया ने क्या किया है? किसी और देश ने क्या किया है? हम पूछते हैं—क्या यह लोकतत्र होगा? बेशक, हमको यूगोस्लाविया, रूस, चीन या अमरीका, इगलैण्ड या जर्मनी के उदाहरण से फायदा उठाना चाहिए, लेकिन हम इन सवालों को ऐसी कसौटी पर परखने की कोशिश करते है, जो जब-तब फायदेमंद हो सकती है, पर आज वह ज्यादा मौज़ू नही है। हमको भारत की परिस्थितियो पर विचार करना होगा। हमे सोचना होगा कि हम अपने मकसद को कैसे हासिल कर सकते है। जब मै भारत के हालात की बात करता हू तो मेरा मतलब सिर्फ कृषि-सम्बन्धी हालात से ही नही, बल्कि लोगो की दशा से भी है। मुझे उसूलन जरा भी सदेह नही है कि सहकारिता, सहकारी प्रयास, शायद ऊचे कलात्मक प्रयास को छोडकर, हर मानव-प्रवृत्ति के क्षेत्र मे अच्छा है। ऐसे कलात्मक प्रयास को छोडकर हर दूसरी प्रवृत्ति मे सहकारिता का मार्ग उत्तम है। जहातक उसूल का सवाल है, इस विषय मे कोई शक नही हो सकता। आप यह आपत्ति पेश कर सकते है कि व्यवहार मे लोग इसे स्वीकार नही करेगे। हमे इसका उत्तर देना है, लेकिन यह जीवन का ज्यादा अच्छा तरीका है और दरअसल जब आप ज्यादा आबादीवाले समाज मे रहते हो तो यह लाजमी तरीका हो जाता है। जहा आवादी छितरी हुई हो, वहा बड़े कृषि फार्म ठीक हो सकते हैं और हर फार्म

का अपना अलग अस्तित्व हो सकता है। वैदिक युग मे जमीन की मालिकी की प्रणाली उस समय के लिए मौजू रही होगी, जबकि जमीन के बडे-बडे हिस्से और वन-प्रदेश उपलब्ध थे और आबादी निस्बतन कम थी, लेकिन देश की आज की आबादी को देखते हुए वैदिक युग की प्रणाली को नही चलाया जा सकता। आज आबादी सैकड़ो गुनी बढ गई है और बढ रही है।

इस समस्या के दो हल है : एक सहकारिता और अखीर मे सहकारी खेती है और दूसरा लोगो को खेती से हटाकर उद्योगो मे लगाना है। हमारे देश मे शहरी और कृषि-जन-सख्या का क्या अनुपात है और उसमे क्या हेर-फेर हुआ है, यह बात हमारे देश के इतिहास मे गैर-मामूली-सी है और सदन के बहुत-से माननीय सदस्यो को इसका बिलाशक पता होगा। यूरोप के अधिकाश औद्योगिक देशो मे, सारी १९वी सदी मे, शहरी आबादी बढी है। शहरी आबादी से मेरा मतलब खासकर उद्योगो मे काम करनेवाली आबादी से है। शहरी आबादी के मुकाबले कृषि-आबादी का अनुपात ५०.५०, ६० ४०, ४०:६० और इसी तरह का था। बेशक, अमरीका मे कृषि-आबादी बहुत कम है। भारत उन थोडे से देशो मे है, जहा पूरी १९वी सदी मे और कुछ हद तक बीसवी सदी मे भी शहरी आबादी की जगह देहाती आबादी बढी है।

इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि काम के मौको का और औद्योगिक प्रवृत्तियो का अभाव रहा और हर कोई रोजी के लिए जमीन का सहारा लेता था और जमीन पर बोझ बढाता था। जमीन खाली नही थी। नये लोगो के

प्रवेश करने के पहले ही भूमि पर काफी लोग मुनहसिर थे। भारत की गरीबी का यह बुनियादी कारण है, यानी भूमि पर मनुष्यों का बढा हुआ भार। इसलिए हमे भूमि पर से लोगो को हटाना होगा और उन्हे कुछ दूसरे धंधो मे लगाना होगा। 'हटाने से' मेरा यह मतलब नही कि उन्हें कलकत्ता या बम्बई मे ले आया जाय और वहा बसा दिया जाय, बल्कि वही उनके लिए औद्योगिक प्रवृत्तियां मुहय्या की जायं।

दूसरा हल भूमि के क्षेत्र मे सहकारी प्रयास अपनाना है। यह तर्क-संगत, वैज्ञानिक और युक्ति-युक्त तरीका है। इसके अलावा, इससे हमारे दूसरे लक्ष्य यानी भूमि की पैदावार बढाने के लक्ष्य को पूरा करने मे मदद मिलेगी। जाहिर है कि दूसरी वाते समान हो और ज्यादा अच्छी तकनीक और तरीके काम मे लाये जाय तो पैदावार मे बढोतरी होगी। पुराने औजारो अथवा खराब तरीको से पैदावार बढाने की कल्पना करना अपने-आपमे असंगत है।

जमीन की छोटी इकाइयो मे ज्यादा अच्छे तरीके काम मे नही लाये जा सकते। लेकिन एक बडा किसान, जिसके पास कई सौ एकड का फार्म हो, वह ज्यादा अच्छे तरीके अपना सकता है। मै ट्रैक्टरो की बात नही कर रहा हूं। यह वात नही कि मै ट्रैक्टरों का विरोधी हूं, किन्तु मेरे खयाल में देश के मौजूदा हालात मे ट्रैक्टर बडे पैमाने पर काम में नही लाये जा सकते। मै तो ज्यादा अच्छे औजारो और ज्यादा अच्छे तरीकों की बात सोच रहा हू। उनका जमीन की छोटी इकाइयो मे प्रयोग नहीं किया जा सकता। पहले तो छोटे, गरीब किसान के पास साधन ही नही होते। दूसरे, उसे सुधरे

औजारो और तरीको का शिक्षण नही होता। इन तरीको का प्रयोग करने के लिए बडे फार्मों की जरूरत है। राजस्थान में विशाल राजकीय फार्म मे इस समय बहुत ही आश्चर्यजनक परिणाम हासिल किये जा रहे है। यह पाच हजार एकड़ का फार्म है और जिन लोगो ने उसे देखा है, उन्होने मुझे बताया है कि वहा अचरज मे डालनेवाली फसले हुई है। मामूली तौर पर चार फुट की फसल वहा दस फुट ऊची है।

फिर भी दूसरे कारणो से मै बहुत बडे फार्मों के हक मे नही हू। हमारा लक्ष्य ऐसी कृषि-अर्थ-व्यवस्था है, जिसमे छोटे फार्म होगे और उन्हे देहाती सतह पर सहकारी ढग से गठित किया जायगा। अगर इकाई बहुत बडी होगी तो सह-कारिता बहुत कामयाबी से नही चलेगी। मै नही चाहता कि सहकारी समिति का दायरा एक या दो गावो से बडा हो, क्योकि बड़ी इकाइयो मे निजी सम्पर्क नही रहेगा। उनमे अजनबी आदमी आते है, जिन्हे लोग जानते नही। उस दशा मे दो बाते होगी। एक तो यह कि सरकारी अफसरो का प्रवेश होगा और मै चाहता हू कि सरकारी अफसरो का, जहातक मुमकिन हो, दखल न हो। दूसरे, उस बडे ग्राम-समूह मे कुछ चालाक लोग कर्त्ता-धर्त्ता बन सकते है और दूसरो का शोषण कर सकते है। लेकिन छोटे गाव मे, जहा लोग एक-दूसरे को जानते है, एक प्रकार की कुनबे की-सी भावना होती है। लोगो को पता होता है कि कौन खराब और कौन भला आदमी है। वे कम-ज्यादा मिल-जुलकर चल सकते है और लड-झगडकर भी एक साथ काम कर सकते है। यह विचार है, यानी एक या दो गाव मिलकर एक सहकारी समिति बनायगे और इस

प्रकार की दस या बारह समितिया आर्थिक उद्देश्यों के लिए अपना सहकारी सघ बना लेगी। छोटी इकाई परिणाम लाने मे बेकार साबित हो सकती है या पूरी तरह से स्वावलम्बी नही हो सकती है, लेकिन सहकारी सघ ऐसा हो सकता है।

अगर लोग संयुक्त खेती करे तो बहुत अच्छा, लेकिन मै उन्हे यह करने के लिए नही कहता, क्योकि मै यह महसूस करता हू कि सयुक्त खेती अच्छी होते हुए भी लोगो को उसे धीमे-धीमे अपनाना होगा। उसे थोपा नही जा सकता। आपको उसका मनोविज्ञान और व्यवहार सीखना होगा।

प्रशिक्षण का महत्व

जहातक व्यवहार का सम्बन्ध है, मेरे खयाल से यह बड़े महत्व की बात है कि हम अभी से लोगो को, काफी लोगो को, उसकी शिक्षा दे। जबतक प्रशिक्षित सहकारी कार्यकर्त्ता नही होगे, वह हर्गिज कामयाब नही होगी और प्रशिक्षण का मतलब यह है कि केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारे और सामुदायिक विकास आन्दोलन, सभी यह काम अलग-अलग सतहो और मात्रा मे करते है। सबसे पहली बात यह कि कुछ ऊचे दर्जे का प्रशिक्षण पाये हुए लोग होने चाहिए, जो अपने विषय के माहिर हो। हम अपने कृषि-कालेजो, देहाती सस्थाओ और दूसरी जगहो पर खास कक्षाए शुरू कर सकते है। दूसरे शब्दो मे, हर कालेज मे कुछ लोग सहकारिता के पूरे ज्ञाता और अनुभवी होने चाहिए। फिर कुछ ऐसे लोग होने चाहिए, जो उस स्टैण्डर्ड के न होते हुए भी काफी तजरबेकार हों। अखीर में, पंचो और सरपंचों को सहकारी समितिया और सामुदायिक

विकास आन्दोलन थोडा प्रशिक्षण दे। इस प्रकार प्रशिक्षण तीन भागो मे बाटा जा सकता है। एक, थोडे शिक्षण का व्यापक आधार हो। दूसरा, काफी प्रशिक्षण का थोड़ा ऊचा आधार हो और तीसरा, चोटी पर दरअसल बहुत ही उच्च शिक्षण पाये हुए लोग हो, यह जरूरी है।

दूसरा पहलू मनोवैज्ञानिक है। अगर लोग सेवा सहकारी सस्था से शुरू करे और कामयाब हो तो उनके लिए अगला कदम सक्षिप्त होगा। फैसला मै या ससद नही करेगे। सेवा सहकारी सस्था फैसला करेगी। अगर वे हमसे मदद मागे तो हम मदद देने की कोशिश करेगे। अखीर मे वे ही सेवा सहकारी सस्थाओ मे अपने अनुभव की बुनियाद पर दूसरे क्षेत्रो मे संयुक्त खेती के प्रयोगो को देखकर फैसला करेगे। किसान सिद्धान्त की निस्बत मिसाल से प्रेरित होता है। मेरे खयाल से काम की यही मजिले है।

मुझे यकीन है कि सयुक्त खेती अधिक पैदावार, अधिक एकता और वर्ग-भेदो को दूर करने के लिए जरूरी है। यह महत्व की चीज है। यह इसका मनोवैज्ञानिक अश है। आप इस प्रकार धीमे-धीमे, अचानक नही, गाव के सारे सामाजिक ढाचे को बदल देगे। सहकारी सगठन, पचायते और ये ग्राम-सस्थाए हमारे समाज के वास्तविक लोकतन्त्री आधार का निर्माण करेगी। इसका मतलब है एक कदम के बाद दूसरा कदम उठाया जाय, कडी मेहनत की जाय और लाखो आदमियो तक पहुचा जाय। इसका यह मतलब है कि तरीका बहुत ज्यादा कडा न हो। व्यापक दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट हो, लेकिन उसका प्रयोग वहुत अधिक कठोर न हो। भारत जैसे

विशाल देश में मै किसी ऐसे कठोर प्रयोग के हक मे नही हू, जिसे देश के हर हिस्से में लागू किया जाय । कभी-कभी गेहूं उगानेवाले क्षेत्र के लिए जो प्रयोग उपयोगी होगा, वह धान उगानेवाले क्षेत्र के लिए उतना उपयोगी नही हो सकता है। हालात जुदा है और प्रयोग उन हालात के अनुसार ही होना चाहिए । प्रयोग लचकीला होना चाहिए और यह लाजमी है कि उसकी मजिले होगी । पहली मजिल मोटे तौर पर सेवा सहकारी समिति, बहुउद्देश्यीय सहकारी समिति के गठन की होगी । अगली मजिल मे सयुक्त खेती की सहकारीं सस्थाओं का निर्माण होगा । यह सारे देश मे एक ही रात मे नही हो जायगा । धीमे-धीमे सेवा सहकारी समितियां सयुक्त सहकारी खेती समितियो मे बदल जायगी। कुछ समय ऐसा निकलेगा जब दोनो साथ-साथ चलेगी और अनुभव हासिल करेगी ।

स्वामित्व की कल्पना

सदन को याद होगा, हमने कहा है कि भूमि की मालिकी जारो रहेगी। कुछ लोग कहते है, यह धोखा है और अगर हम सचमुच जमीन की मालिकी को कायम रखना चाहें तो भी हम उसपर कायम नही रह सकेगे । मुझे नही मालूम कि मै भविष्य के बारे में क्या कह सकता हू। मालिकी की यह कल्पना एक अजीब कल्पना है, जो युग-युगो मे बदलती आई है । सदन को पता है कि आचार्य विनोबा भावे कहते है कि जमीन की मालिकी होनी ही नही चाहिए। मै इस विचार का आदर करता हू और मुझे सचमुच बहुत खुशी होगी, अगर जमीन की मालिकी मिट जाय। लेकिन मै नही सोचता कि आज ऐसा हो

सकता है। मै इसका खण्डन नही करता, पर मैं आज उसे व्यावहारिक नही समझता और इसलिए उसपर जोर भी नही देता। लेकिन यह मालिकी की कल्पना सामुदायिक नही है। मान लीजिये, कोई बडी जायदाद है और सीमित दायित्ववाली हिस्सेदारो की कम्पनी है। एक आदमी १० फीसदी जमीन का मालिक है। लेकिन वह यह नही कह सकता—'भूमि का यह खास टुकडा मेरा है।' वह बडे क्षेत्र के दस फीसदी का मालिक है। मालिकी हक काफी ठोस है। उसे लाभ का हिस्सा मिलना है। आज औद्योगिक दृष्टि से पिछडे देशो मे ही जमीन का महत्व बहुत ज्यादा है। भूमि की सभी जगह कीमत है, लेकिन औद्योगिक दृष्टि से पिछडे देशो मे उसकी ज्यादा कीमत है। पर जहा उद्योग पनपते है, स्टाक और शेयर के रूप मे मालिकी बनती है, मालिकी साख का रूप लेती है और निगाह से ओझल हो जाती है। साखवाला आदमी उद्योग शुरू करने के लिए चाहे जितनी पूजी जुटा सकता है। मालिकी की सारी कल्पना ही बदल रही है, फिर भी, हम एक गज जमीन पर बैठकर मालिकी पर जमे है और गर्व से कहते है, 'यह एक गज जमीन मेरी है और उसे कोई नही छीन सकता।' सामुदायिक जीवन के विकास के साथ इसमे भी तब्दीली होनी है। शहरो मे पहले सडके और पुल निजी थे। अब दोनो ही सार्वजनिक सम्पत्ति बन गये है। रेले भी सार्वजनिक सम्पत्ति बन चुकी है। निजी सम्पत्ति की कल्पना बदलती है और जनता और आदमी का उससे लाभ होता है। बदलता समाज मालिकी के इन बुनियादी रूपो के बारे मे अपने विचारो मे तब्दीली लाता है। यह होनेवाला है। उससे डरने की जरूरत

नही। दरअसल हमे उसका स्वागत करना चाहिए, बशर्ते कि उससे हमारे लक्ष्य की पूर्ति होती हो।

इस प्रकार आप इस समस्या पर जिस तरह से भी विचार करे, आपको इस नतीजे पर पहुचना होगा कि हमारा भविष्य सहकारी प्रयोग पर निर्भर करता है। मै कह दू कि सहकारी प्रयोग सिर्फ जमीन पर ही नही, बल्कि उद्योगो में भी मुनासिब है। फिलहाल हम सिर्फ जमीन का ही विचार कर रहे है।[1]

---

१ लोकसभा मे दिया गया भाषण, २८ मार्च १९५६

. १० .

बुनियादी बातें

राष्ट्रीय विकास परिषद की पिछली बैठक मे, मोटे तौर पर, सहकारिता-सम्बन्धी नीति मजूर की गई थी। उसके हर महत्वपूर्ण आधार के बारे मे पूरी सहमति थी। बुनियादी बात यह है कि हर सहकारी समिति अपने सदस्यो मे एक तरह का नजदीकी सम्बन्ध स्थापित करे। यही समन्वय का विचार है। उसका रूप सिर्फ एक तरह के बैक जैसा न हो। वह केवल ऋण देनेवाली सहकारी समिति न हो। वह इतनी बडी भी न हो कि उसमे अजनबी लोग आजाय, वगैरा-वगैरा। यह भी स्वीकार किया गया कि मुख्य रूप से छोटी सहकारी समितिया हो। वे एकरस हो और उनमे अफसरो की दखलन्दाजी न हो। हा, अफसर लोग मदद जरूर करे। इन सब बुनियादी बातो को हरेक ने मजूर किया।

फिर कुछ दूसरे सवाल उठाये गए। पहले तो हमे आदिम जाति क्षेत्रो को अलग करना होगा, यानी हम इन क्षेत्रो के लिए कोई समान और कठोर नियम नही बना सकते। हमे उनके साथ अलग तरह से बर्ताव करना होगा। उन क्षेत्रो मे सहकारी समितियो को जुदा तरह से चलाना होगा। दूसरे शब्दो मे, हमारी नीति लचीली होगी, किन्तु जो बुनियादी बाते मजूर की जा चुकी है, उनको कुदरतन लागू

एक सवाल जिसपर चर्चा हुई, यह था कि सहकारी समितिया बडी हों या छोटी। व्यवहार मे ज्यादा फर्क नही है, क्योकि वास्तव मे बड़ी सहकारी समितिया बनाई ही नही जाती, कुछ जगहो मे ग्राम सहकारी समिति से थोडी बडी सहकारी बनाना मुनासिब हो सकता है। बेशक, जहा गांव बहुत छोटे हो, वहा दो-तीन गावो को एक सहकारी सगठन मे शामिल किया जा सकता है और अखीर मे इसका फैसला राज्य सरकार के हाथो में छोड़ देना होगा। अगर वह समझती है कि पाच-छ. गावों को एक सहकारी सगठन मे शामिल कर लिया जाय तो ऐसा किया जा सकता है, लेकिन जहातक मुमकिन हो, हमे यह नही करना चाहिए।

दूसरा सवाल यह था कि सरकार सहकारी सगठनो मे शेयर (हिस्से) खरीदे या नही और इस पर काफी चर्चा हुई। हममे से कुछकी राय थी कि सरकार ऐसा न करे। हम स्वीकार करते है कि सहकारी सगठनो की मदद की जानी चाहिए। यह मदद रुपये के रूप मे न होकर पैदावार बढाने की योजनाओ मे दी जाय। इन छोटे मुद्दो पर एक कमेटी विचार कर रही है, जो कल नियुक्त की गई थी, किन्तु, जैसा मैने कहा, हम बहुत ज्यादा कड़े नियम नही बना सकते।[1]

---

१ राष्ट्रीय विकास परिषद की बारहवी बैठक का उद्घाटन-भाषण ३ अप्रैल १९५९

: ११ :

समस्याओं पर लचीला दृष्टिकोण

मैं अपने प्रारम्भिक वक्तव्य मे मामूली सामुदायिक विकास आन्दोलन के बारे में विशेष न कहकर सहकारिता आन्दोलन की चर्चा करना चाहूंगा। सहकारिता आन्दोलन भारत के लिए या दुनिया के लिए कोई नया आन्दोलन नही है। हम सहकारी सगठनो का काफी तजरवा हासिल कर चुके है, लेकिन हमने जो व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है, उसमे कम-से-कम हमारे लिए कुछ नवीनता है। हमारा यह दृष्टिकोण कोई अचानक नही बना है। काफी गहरे सोच-विचार और चिन्तन के वाद हमने उसे अपनाया है।

राष्ट्रीय विकास परिषद् का प्रस्ताव

कई महीनो पहले राष्ट्रीय विकास परिषद की वैठक हुई थी और उसने फैसला किया कि हमें इस कार्यक्रम पर अमल करना चाहिए और देश के हर गाव मे सहकारी सगठन कायम करना चाहिए। इसपर शायद उन लोगो को ताज्जुब हुआ, जो इस विषय पर विचार नही कर रहे थे। कुछ समय वाद राष्ट्रीय काग्रेस ने अपने नागपुर-अधिवेशन मे न सिर्फ इसे मंजूर किया, वल्कि उसपर काफी जोर दिया। सयुक्त खेती के अन्तिम लक्ष्य पर विशेष जोर दिया। लेकिन काग्रेस ने कहा

कि फिलहाल और अगले तीन साल हम सेवा सहकारी संगठन कायम करने पर ताकत लगावे।

इसके वाद इस निश्चय पर कुछ उत्तेजना पैदा हुई, मानो कोई घातक कदम उठाया गया हो, यहातक कि इस सदन मे भी ऐसे भाषण दिये गए, जिनसे वक्ताओ की उत्तेजना और विरोध का पता चलता था।

कुछ हफ्ते और गुजरे और इस सदन मे और शायद उसके बाहर भी हर किसीने मोटे तौर पर और बहुत मजबूती से इस दृष्टिकोण को मान लिया है। उन थोडे-से हठी लोगो की बात अलग है, जो रोशनी तेज होने पर भी उसे नही देखेगे।

ऐसे बडे कार्यक्रम के सम्बन्ध मे व्यौरे पर मतभेद हो सकता है और वह स्वाभाविक है, किन्तु बुनियादी दृष्टिकोण मान लिया गया है और उसका स्वागत किया गया है। मेरे खयाल से देहाती जनता ने उसका विशेष रूप से स्वागत किया है और उसीपर यह लागू भी होता है। मै नही कहता कि हर आदमी ने इसका स्वागत किया है या उसके हर व्यौरे का स्वागत किया गया है या उसे मान लिया गया है, पर उसको लेकर व्यापक दृष्टिकोण का स्वागत किया गया है।

नया सामाजिक ढांचा

शुरू मे मै इसका एक पहलू सदन के सामने रखना चाहूगा। हम सहकारी आन्दोलन, ग्राम सहकारी समितियों या बडी सहकारी समितियो की बात करते है, किन्तु मै चाहूगा कि इस विषय पर और भी व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया जाय, इस दृष्टिकोण से विचार किया जाय कि हमे देहातों का

पुनर्गठन करना है और नई समाज-व्यवस्था की रचना करनी है। सहकारी सगठन या पचायत का वुनियादी स्वरूप सदस्यो का नजदीकी सम्पर्क, सामाजिक एकता और आपसी दायित्व है। धीमे-धीमे नये ग्राम-समाज की रचना के लिए यह जरूरी है। यह वहुत वडा काम है। जव हमने सामुदायिक विकास आन्दोलन शुरू किया तो हमारा यही मकसद था, भले हो हमने उसे सस्थागत रूप न दिया हो। संस्थागत रूप अव सहकारी सगठनो मे प्रकट हो रहा है। अवतक सामुदायिक विकास-आन्दोलन ने देहात के लोगों को स्वावलम्वी वनाने, एक साथ काम करने, सहकार करने, अपने देहातो का निर्माण करने और हर मोर्चे पर, खासकर कृषि के मोर्चे पर, आगे वढ़ने के लिए प्रेरित किया है। अव सहकारी संगठन सामने आ रहा है और उस मकसद को सगठनात्मक संस्थागत रूप दे रहा है।

विशाल प्रयास

दूसरे शब्दो मे यह विशाल प्रयास है कि जमीन की समस्या पर वुनियादी सामाजिक दृष्टिकोण लागू किया जाय। मैं 'विशाल' शब्द का इसलिए उपयोग कर रहा हू कि भारत का आकार विशाल है।

जमीन की छोटी-छोटी इकाइयो मे व्यक्तिगत खेती के दूसरे विचार को हम नापसंद करते है। उससे तरक्की रुकती है। हम सामूहिक खेती के विचार को भी पसन्द नही करते। हम यह सहकारिता का दृष्टिकोण पेश करते हैं, जो हमारे वुनियादी आदर्शों के अनुरूप है।

वेशक, जैसे-जैसे हम आगे वढेगे, हम सहकारिता के

विषय मे बार-बार विचार करेंगे, उसमे फर्क करेंगे, बदलेंगे और बदलती परिस्थितियो के अनुरूप उसे ढालेंगे। इस प्रकार की समस्या को हल करने मे लचीलापन जरूरी है। दो कारणों से कडा सिद्धान्तवादी या शास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाना मुनासिब नही होगा। एक तो यह कि भारत जैसे विविधतावाले देश मे सिद्धान्तवादी और कठोर दृष्टिकोण अपनाना बुद्धिमत्तापूर्ण नही होगा। दूसरे, यह स्वाभाविक है कि ऐसे विशाल आन्दोलन मे, जिसका देश के ३६ करोड आदमियो से सम्बन्ध है, कडा दृष्टिकोण नही अपनाया जा सकता। इसलिए मै सदन से इस फैसले पर व्यापक दृष्टि से विचार करने का अनुरोध करूगा।

हम लचीले हो, लेकिन यह लचकीलापन इस हद तक न हो कि वह अस्पष्ट मामूली चीज बनकर रह जाय। यह बेकार होगा। इसलिए हमे अपने देहातो मे सहकारी आन्दोलन के स्वरूप की काफी स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए।

ग्राम ऋण सर्वेक्षण

इस बारे मे सदन को ग्राम ऋण सर्वेक्षण समिति की सिफारिशो को याद करना है। सर्वेक्षण का नतीजा यह हुआ है कि बहुत-से अच्छे सुझाव और प्रस्ताव सामने आये। लेकिन ग्राम सहकारी समितियो के बारे मे उसकी सिफारिश इस खेदजनक अनुमान पर आधारित थी कि हमारे ग्रामीण इतने पिछडे हुए है कि उन्हे ज्यादा जिम्मेदारी नही सौपी जा सकती। मै निजी तौर पर इस दृष्टिकोण को स्वीकार नही करता।

दूसरा दृष्टिकोण यह है कि सहकारी आन्दोलन का मूल

तत्व यह है कि वह गैर-सरकारी, स्वावलम्बी और आत्म-निर्भर होना चाहिए और उसमे सदस्यो के बीच गहरा सम्पर्क और पारस्परिक दायित्व की भावना होनी चाहिए।

दो या तीन साल तक चर्चा चली। ग्राम ऋण सर्वेक्षण के कारण और बैको से, खासकर रिजर्व बैक से, रुपया मिलने के कारण बडी सहकारी समितिया बनाने की प्रवृत्ति ने जोर पकडा। मै नही कहता कि बडी सहकारी समितिया कामयाब नही हुई, लेकिन धीरे-धीरे यह राय पक्की हुई है कि छोटी ग्राम सहकारी समितिया बननी चाहिए और इसके विविध कारणो का मै निर्देश कर चुका हू। सच्चा सहकारी सगठन वह है, जिससे आप लोगो को आगे बढा सके, लोग एक-दूसरे से सम्पर्क कायम कर सके और आपसी जिम्मेदारी और सामाजिक एकता का विकास हो। अगर आप चाहते है कि लोग विकास करे और आप वास्तविक सहकारी ढाचे की नीव रखना चाहते है तो वह सगठन बहुत बडा नही, बल्कि छोटा होना चाहिए।

इस खाई को पाटने के लिए एक जुदा तरीका सुझाया गया। वह यह कि ग्राम सहकारी समितिया बनाई जाय, लेकिन दस, बारह या पन्द्रह ऐसी समितियो का हम एक सहकारी सघ भी बना ले, ताकि उनकी मामूली तौर पर देख-भाल की जा सके और बैक उन्हे कुछ कामो के लिए सहायता दे सके।

राष्ट्रीय विकास परिषद ने ग्राम सहकारी समितियो के हक मे फैसला किया। राष्ट्रीय काग्रेस ने तो निश्चय रूप से उनका समर्थन किया। राष्ट्रीय विकास परिषद ने अपनी हाल

की बैठक मे फिर इस विषय में विचार किया और एक उपसमिति नियुक्त की, जिसने अपनी रिपोर्ट दे दी है।

अब हालत यह है कि ये व्यापक सिद्धान्त पूरी तरह मान लिये गए है। जैसाकि मैने बताया, ये उसूल ये है कि सामाजिक एकता हो और इन सहकारी संस्थाओं पर अफसरो का प्रभुत्व न हो। हा, अफसर मदद जरूर कर सकते है। राज्य, जहांतक मुमकिन हो, उनके शेयर (हिस्से) खरीदकर उनकी आर्थिक मदद न करे।

आदिम जाति क्षेत्र

यह कह लेने के बाद कुछ अपवादो की भी गुजाइश है। एक बड़ा और लाजमी अपवाद आदिम जाति क्षेत्रो के सम्बन्ध में है। हम सख्ती के साथ ऐसी कोई बात नही करना चाहते, जो शेप भारत के लिए तो ठीक हो, लेकिन, आदिम जाति क्षेत्रों के लिए नही। इसलिए आदिम जाति क्षेत्रो मे उनकी परिस्थितियो के अनुरूप सहकारी समितिया बनायंगे, क्योकि उनमे मजबूत जातीय भावनाएं और संगठन होते है और हमारी सहकारी समितिया जरूर उनके अनुरूप होगी।

आदिम जाति क्षेत्रो की तरह भारत में और पिछडे क्षेत्र है और समस्या यह है कि हम उनके लिए उसूल मे ढिलाई करे या नही। इस बारे मे कुछ अलग-अलग राये है। एक अर्थ मे, भारत का ६० फीसदी हिस्सा पिछड़ा हुआ है। आखिर यह ऐसा सवाल नही है कि जिसपर केवल सिद्धान्त की दृष्टि से चर्चा की जा सके। हमे हर पहलू को देखकर फैसला करना होगा और यह सिद्धान्त ध्यान मे रखना होगा कि हमे जहां

तक हो, छोटी सहकारी समितिया और उनके वडे संघ कायम करना है ।

लाजमी है कि खुद राज्य सरकार को यह फैसला करना होगा कि किस जगह उसूल को ढीला करना है। उनकी जिम्मेदारी है और उन्हे ही फैसला करना होगा । लेकिन दूसरे सवालो के बारे मे, जैसेकि राज्य की हिस्सेदारी का सवाल है, हम जैसे-जैसे समस्याए पैदा होगी, वैसे-वैसे विचार करेगे। हम हमेशा उन्हे कुछ लचीलेपन से हल करने की कोशिश करेगे। आखिरी नतीजा यह है कि राज्य के अधिकारी विचार करेगे और फैसला करेगे ।

इस विषय मे एक और समस्या है । इससे पहले अनेक मर्तबा यह कहा गया है कि सहकारिता कानून को सरल वनाया जाय । उसे सरल वनाया जा रहा है । हमे पता चला है कि कानून को आसान बनाने के साथ-साथ दरअसल कानून के परिपालन को सरल वनाने की जरूरत है । हमे पक्का यकीन है कि सहकारी सगठनो का सरकारी रूप खत्म होना चाहिए और अगर वे चाहे तो उन्हे गलती करने की आज़ादी होनी चाहिए ।

प्रशिक्षण और कुशलता

अब एक वहुत गम्भीर कठिनाई उठ खडी होती है। सहकारी समितियो के सचालन मे प्रशिक्षण और कुशलता की जरूरत होती है । वेशक, सगठक को काफी प्रशिक्षित और कुशल होना चाहिए । ग्राम सहकारी समिति के सचिव या सेक्रेटरी भी कुछ प्रशिक्षित होने चाहिए, मामूली हिसाब-किताव

रखने की कला उन्हे आनी चाहिए। यह कौशल [illegible]। कभी-कभी सारे गाव में एक भी आदमी यह काम जाननेवाला नही मिलेगा। हम उन्हे थोडा-थोडा करके बडी सख्या मे प्रशिक्षित करेगे। मेरे खयाल से सही बात यह होगी कि दो आदमी इस काम को करनेवाले हों। एक ग्राम-सेवक और दूसरा ग्राम-शिक्षक। ग्राम-सेवक इस समय दस गावों की सेवा करता है और वह पन्द्रह या दस या इससे भी कम सहकारी समितियो का काम देखे, यह उसके लिए भारी पडेगा। ग्राम-सेवक की कल्पना सामुदायिक विकास-आन्दोलन से पैदा हुई। वह इस आन्दोलन का हिस्सा है और उसे इसकी शिक्षा मिली है। मेरा खयाल है, करीब ३०,००० से ४०,००० ग्राम-सेवकों को प्रशिक्षित किया गया है। शायद उस पर जिम्मेदारी ज्यादा है और हमे उसमे कमी करनी पडेगी। इसके बाद ग्राम-शिक्षक है। मेरा खयाल है कि सहकारी समिति के हिसाब-किताब का काम उसे सौप दिया जाय। लेकिन इस सबके बारे मे प्रयोग करके देखना होगा। यह समस्या उठ सकती है कि गाव मे जरूरी ट्रेनिग पाया या पढा-लिखा एक भी आदमी न हो। फिर यह भी हो सकता है कि शुरुआत करने के लिए गाव मे रुपये-पैसे की एकदम कमी हो।

उत्पादक योजनाओ के लिए ही दी जाय और सहकारी समितियो के हाथो मे रुपये के उपयोग का फैसला न छोडा जाय।

मै चाहता हू कि सदन इस प्रसग मे समस्या पर विचार करे। मै यह कहने का साहस करता हू कि कभी-कभी गरमा-गरम वाद-विवाद के बावजूद कोई आदमी ऐसा नही निकलेगा, जो इस बुनियादी दृष्टिकोण से असहमत हो, क्योकि कोई दूसरा दृष्टिकोण है ही नही। जैसाकि मैने हाल मे सदन के सामने यह सवाल पेश किया था, जमीन की बहुसख्यक छोटी इकाइयो से निपटने का और दूसरा रास्ता क्या है? अगर आप उन्हे ज्यो-का-त्यो रहने देते है तो वे अपने घरौदे से कभी बाहर नही आ सकेगी। उनमे थोडा सुधार हो सकता है, लेकिन वे अपनी चहारदीवारी से कभी नही निकल सकेगी।

ज्योही आप जमीन की समस्या के प्रति दृष्टिकोण मे यह बुनियादी, मौलिक, परिवर्तन करते है, वैसे ही मेरा खयाल है कि उसके फलस्वरूप लाजमी तौर पर बराबर सयुक्त खेती को अपनाना होगा, जिसमे सदस्य अपनी जमीन के अलग-अलग हिस्सेदार बने रह सकते है।

अगर हम समस्या पर इस व्यापक दृष्टिकोण से, जो मैने सदन के सामने रखा है, विचार करेंगे तो हम देखेगे कि इसका सम्बन्ध सिर्फ खेती और कृषि से ही नही है, बल्कि वह हमको बडे उद्देश्यो की ओर ले जायगा, धीरे-धीरे देहाती जिन्दगी के सारे ढाचे को ही बदल देगा।[1]

---

१ सामुदायिक विकास और सहकारिता मन्त्रालय की अनुदान माग पर हुई बहस के दौरान लोकसभा मे भाषण, १२ अप्रैल १९५९

: १२ :

सहकारी संगठन के व्यावहारिक पहलू

नागपुर-प्रस्तावो ने एक गतिशील प्रक्रिया शुरू कर दी है। उनसे देश की और काग्रेस सगठन की भी बडी सेवा हुई है, बशर्ते कि उनसे सहकारी आन्दोलन को जो गति मिली है, उसके साथ हम बराबर आगे बढे और कुछ काम करे।

यह मानी हुई हकीकत है कि सहकारी खेती की जगह लेनेवाली और कोई चीज ही नही है। हम अब जिसकी चर्चा कर रहे है, उसका फैसला तो हो चुका है। अब हमे व्यौरा तय करना है कि उस कार्यक्रम पर किस तरह अमल किया जाय और सहकारिता के अमली पहलुओ को तय करना है।

हम इस विषय पर विविध दृष्टियो से विचार करते आ रहे है। मेरा ख्याल है, आप सहमत होगे कि अब उसके दर्शन अथवा मुख्य सिद्धान्तो की चर्चा करने की कोई जरूरत नही है। दरअसल, मेरे ख़याल से इसकी कभी भी जरूरत नही थी, कारण यह बात इतनी साफ़ है।

नागपुर-प्रस्ताव के बाद कुछ विरोध हुआ। वह बहुत ज्यादा तो नही था, लेकिन उसका स्वर तेज था और इसलिए उसकी ओर ध्यान गया। यह अच्छा हुआ, नही तो होता यह है कि अधिकतर लोग चुपचाप मान लेते है। दो-तीन महीने बाद यह मामला भी तय हो गया।

अब हम सहकारी खेती के व्यावहारिक पहलुओ की चर्चा कर रहे है, उसके सिद्धान्त या दर्शन की नही । यह कहा गया है कि नागपुर-प्रस्तावों के बाद से काग्रेस-सगठन को बडी गति मिली है । यह एक दिलचस्प बात है, क्योकि शायद कुछ खास काग्रेसी आशकित थे कि इस प्रस्ताव से किसान, या कम-से-कम किसानो का एक वर्ग, नाराज हो जायगा ।

असलियत यह है कि कुल मिलाकर इसका किसानो ने स्वागत किया है। यह सही है कि कुछ किसानो के दिमागो मे कुछ सन्देह हैं, लेकिन मौटे तौर पर प्रस्ताव का पूरी तरह स्वागत हुआ है। आलोचना सयुक्त खेती के बारे मे हुई है और दूसरे खास पहलू जाहिरा तौर पर पूरी तरह स्वीकार कर लिये गए है ।

दृढ़ किन्तु कड़ा नही

इस समस्या के प्रति हमारा दृष्टिकोण दृढ है, किन्तु कडा नही है । मैं सयुक्त खेती के बारे में ज्यादा नही कहूंगा, हालांकि हमने अपने मूल प्रस्ताव मे सयुक्त खेती के लक्ष्य पर जोर दिया है। साथ ही, हमने यह भी कहा था कि फिलहाल हमे सेवा सहकारी संगठनो पर जोर देना है। इसकी दो विरोधी-से रूपो मे व्याख्या की गई है। कुछ लोगो को अचरज हुआ है कि हमने सयुक्त खेती को तीन साल के लिए स्थगित कर दिया । दूसरे लोग सोचते है कि सयुक्त खेती तुरन्त शुरू होनेवाली है और अपने साथ घोर तबाही लानेवाली है ।

दोनो ही मेरे खयाल से गलत है। हमारे लिए यह सोचना व्यावहारिक नही होगा कि हम तीन साल सेवा सह-

कारी संगठनो पर जोर दे और उसके बाद संयुक्त खेती की शुरुआत करे। आप इन कामों को अलग चौखटो मे बाट-करके नही कर सकते। हमे पूरी तस्वीर अपने सामने रखनी होगी। हालाकि हमारा फिलहाल जोर सेवा सहकारी सगठनो पर है, लेकिन जहा हालात अनुकूल हो, वहा सयुक्त खेती की भी शुरुआत कर सकते है।

सहकारिता आन्दोलन का मूल तत्त्व उसका स्वेच्छिक रूप है। हमे लोगो को अमली प्रयोग करके यकीन दिलाना होगा। हमे लोगो को दिखाना होगा कि सहकारिता कितनी कामयाब हो सकती है। दूसरी अहम बात यह है कि हमे सेवा सहकारी समितियो और संयुक्त खेती को जुदा नही करना चाहिए।

एक बोलनेवाले ने ऋण का सवाल उठाया और जुदा-जुदा अनुमानो के आधार पर यह जाहिर किया कि इस कार्यक्रम की शुरुआत करने के लिए बहुत धन की जरूरत होगी। हा, यह तो जाहिर है। अगर हम देश की आबादी, किसानो की सख्या और ऋण का हिसाब लगाये तो जरूर ही बहुत बड़ी रकम बनेगी। लेकिन किसान केवल ऐसे ऋण-उपभोक्ता ही नही होगे, जो कुछ भी पैदा नही करते।

ऋण और उत्पादन का योग

कुछ रूपो मे वर्तमान प्रणाली पुरानी बनिया-प्रणाली जितनी भी संतोषजनक नही है। बनिया किसान की जमीन हड़प सकता था और एक बुरा सामाजिक तत्त्व था, लेकिन किसान की जरूरत के समय वह उसकी सेवा करने को तैयार

रहता था। किसान उसकी मदद ले सकता था, हालांकि फसल के समय बनिया अपनी हालत का पूरा फायदा उठा सकता था। मौजूदा प्रणाली मे किसान को चक्कर-पर-चक्कर काटने होते है और जब कर्ज मिलता है तो बहुत देर हो चुकती है। आज बडा किसान कही ज्यादा ऋण प्राप्त कर सकता है और दरअसल अपनी जरूरत से ज्यादा पा भी लेता है, कारण, वह बडी जमानत दे सकता है। हम गरीब किसान क लिए ऋण का कैसे प्रबन्ध करे, जिसके पास जमानत देने को कुछ नही है। और वही ऐसा आदमी है, जिसे अधिक पैदा करने के लिए मदद की सबसे ज्यादा जरूरत है। फिर भारत मे उसकी सख्या ही सबसे ज्यादा है।

यह उसूल हमेशा याद रखना होगा कि ऋण उत्पादन के लिए दिया जाय। जहा तक मुझे मालूम है, ऋण जमानत की बुनियाद पर दिये गए है और इसलिए उनसे थोडे लोगो ने ही फायदा उठाया है।

किसानो मे, खासकर छोटे किसानो मे, कुव्यवस्था की आदत है। आप उसे जो ऋण देते है, वह उसे उत्पादक योजनाओ के बजाय दूसरे कामो पर खर्च कर सकता है। इसलिए यह जरूरी है कि ऋण का उत्पादन के साथ सम्बन्ध जोड दिया जाय। केवल इसी तरह हम ऋण की वापस वसूली कर सकेगे।

खेती की पैदावार बढाये बिना हमारी सब पाचसाला-योजनाए नाकामयाब होगी, क्योकि हमारे सब कामो मे वह बुनियादी चीज है। मेरे खयाल से अब हरकोई यह महसूस करता है। कुछ समय पहले तक इसे महसूस नही किया जाता

था, इसीलिए राज्यो मे कृषि-विभाग साधारणतया सहायक और दूसरे दर्जे के और कम महत्वपूर्ण समझे जाते थे।

आज हमारे सामने जो कठिन समस्याएं है, उनको देखते हुए कृषि-विभाग राज्य सरकार का सबसे महत्वपूर्ण विभाग समझा जा सकता है।

वैज्ञानिक खेती

खेती की पैदावार हमारी बुनियादी समस्या है। वही हर बात की कसौटी होनी चाहिए। हमारे कृपि-विभागो में अच्छे विशेषज्ञ और अफसर है, लेकिन मुझे अक्सर यह सोचना पडता है कि अच्छे होते हुए भी वे बीते हुए कल के अर्थ में अच्छे हैं, आज के अर्थ मे नही और आनेवाले कल के अर्थ मे तो और भी कम अच्छे है।

वे बीते कल की निश्चित परिभाषा मे सोचते है और उन्हे नये तरीको से डर लगता है। यह कोई अच्छी बात नही। यह सही है कि हमको विचारो मे परम्परावादी होना पड़ता है और हम अचानक अंटशट योजनाए शुरू नही कर सकते। लेकिन हमें बहुत ज्यादा परम्परावादी भी नही होना चाहिए। तरक्की की बुनियाद है परिवर्तन और आगे बढ़ना और दुनिया मे खेती की पैदावार को बढाने के लिए जो उल्लेखनीय बाते हो रही है, उनके साथ कदम मिलाकर चलना।

दूसरी दृष्टि से विचार करे तो हमे अपनी खेती को वैज्ञानिक बनाना है। जब मै वैज्ञानिक खेती की बात करता हू तो मेरा मतलब औजारो से होनेवाली खेती से नही है। मै यान्त्रिक खेती के खिलाफ नही हू, लेकिन भारत की विशाल

आवादी को देखते हुए, मेरे खयाल से, वह यहा के लिए मौजू नही है ।

आप अभी काफी समय तक भारतीय खेती को यात्रिक रूप देने की बात नही सोच सकते । जवतक आप काफी आबादी को उद्योगो मे नही लगा देते, यह व्यावहारिक नही होगा । फिर भी मैं यात्रिक खेती के अर्थ मे न सही, लेकिन वैज्ञानिक खेती के बारे मे जरूर सोचता हू ।

हम अपने मामूली किसान को, छोटे किसान को वैज्ञानिक खेती की बात समझा सकते है और इसमे मुझे कोई बुनियादी कठिनाई नजर नही आती । भारतीय किसान काफी भला है, बशर्तेकि हम उसके पास ठीक ढग से जाय । बेशक, वह परम्परावादी है, किन्तु इतना परम्परावादी नही कि ठीक ढग से समझाने पर बदल ही न सके । मनुष्य के रूप मे वह और स्थानो के किसानो जितना ही अच्छा है ।

अचरज की बात है कि ग्राम ऋण सर्वेक्षण समिति यह मानकर चली कि हमारे देहाती इतने पिछडे हुए है या झगडालू है या आपस मे लडते रहते है कि आप उनपर भरोसा नही कर सकते । इसलिए उसने छोटी सहकारी समितियो का विरोध किया और बडी सहकारी समितियो की हिमायत की । उसका सारा दृष्टिकोण किसानो के प्रति अविश्वास और इस मान्यता पर आधारित था कि वे अयोग्य है । अगर भारतीय किसान सचमुच ऐसा है तो कैसी भी योजनाए बनाई जाय, वे जरूर नाकामयाब होगी । मै यह विचार स्वीकार नही करता । हमे अपने किसान को खेती के मामले मे अधिक वैज्ञानिक बनाना है और जिस हद तक वह अधिक वैज्ञानिक बनेगा,

उस हद तक वह कामयाब होगा और हम कामयाब हो सकेंगे।

हमें करना क्या है ? प्रशिक्षण जरूरी है । इन बातो का इतजाम सहकारी समितियो जैसी सस्थाओं के जरिये ज्यादा आसानी से किया जा सकता है। मैं और कोई तरीका नही सोच सकता ।

इसलिए भी सहकारी समितिया जरूरी हो जाती है । सहकारी सगठन सामाजिक सगठन का उच्च रूप है, इसमे कोई शक नही है । मै नही समझता कि कोई इस सिद्ध और प्रकट तथ्य को मानने से कैसे इन्कार कर सकता है । मैने अक्सर पूछा है कि और कोई उपाय पेश किया जाय, लेकिन आलोचक चुप रहे ।

काग्रेस कार्यसमिति सौ आदमियो को प्रशिक्षित करना चाहती है, जो दूसरी जगह प्रशिक्षित केन्द्रो का काम सम्हाल सके । हम उम्मीद करते है कि राज्य सरकारे और केन्द्रीय सरकार बहुत बडी तादाद मे लोगो को प्रशिक्षण देंगी, किन्तु ऊपर बताये काम हम अपनी सस्था की ओर से करना चाहते है । हम इसके लिए सरकार पर ही निर्भर नही रहना चाहते। किसी भी दल को महज सरकार पर निर्भर नही रहना चाहिए, नही तो वह उसका पुच्छल्ला या सहारागीर बन जायगा । यह बात उस सगठन के लिए भी अच्छी नही है, जो सरकार को चलाता है ।

यह जरूरी है कि हम अपने माध्यमिक स्कूलो मे सहकारिता का विषय सरल रूप मे दाखिल करे, ताकि वह बुनियादी प्रशिक्षण का अग बन जाय ।

वर्तमान स्थिति

इस समय १,२०,००० सहकारी समितियो मे से आधी काम नही कर रही है। आधी इस तरह काम करती है कि उसमे हेर-फेर करना होगा। मौजूदा स्थिति इतनी कमजोर नही है कि हम तरक्की न कर सके। अगर ५०,००० सहकारी समितिया भी हो तो काम शुरू करने के लिए काफी होगी। अगर सन् १९५९ मे एक भी नई सहकारी समिति स्थापित नही होगी तो मैं परवा नही करूगा, हालाकि मै चाहूगा कि नई सहकारी समितिया कायम हो।

इस समय का उपयोग लोगो को सहकारी समितियो का महत्व समझाने मे किया जा सकता है। हर किसान-कुटुम्ब को सहकारी समितियो का महत्व समझाया जाना चाहिए। वर्तमान प्रगति इसलिए काफी नही है, क्योकि हमारे पास प्रशिक्षित आदमियो की कमी है, इसलिए नही कि लोग यह तरीका अपनाने मे हिचकते है।

यह जरूरी है कि राज्य सरकारे और केन्द्रीय सरकार प्रशिक्षण योजनाए हाथ मे ले। काग्रेस को भी अपनी दृष्टि से प्रशिक्षण का काम हाथ मे लेना चाहिए। अगर हम यह नही करते और अपने कार्यकर्ताओ को प्रशिक्षित नही करते तो उनके दिमाग योजना के अनुरूप नही बनेगे और वे कोरमकोर रहेगे। हमे मण्डलो के कार्यकर्ताओ को सरकारी प्रशिक्षण शिविरो मे शामिल होने के लिए प्रेरित करना चाहिए। एक गाव के लिए एक सहकारी समिति बनाई जाय, हालाकि अगर गाव छोटे हो तो वहा और पिछडे क्षेत्रो मे दो या तीन गावो को एक सहकारी सगठन मे शामिल किया जा सकता है।

यह सवाल कभी-कभी पूछा जाता है कि कोई आदमी सहकारी सयुक्त खेती सस्था मे शामिल होता है तो क्या उसे वाद मे उससे अलग होने की इजाजत होगी ? दो-तीन शर्तो के साथ उसके अलग होने मे कोई कठिनाई नही होगी ।

एक शर्त यह होगी कि किसीको भी अपनी मन की मौज के अनुसार सहकारी समिति मे शामिल होने या निकल जाने की छूट नही होनी चाहिए । एक निश्चित समय की, मिसाल के लिए तीन वरस की, मियाद होनी चाहिए और उसके पहले किसीको सहकारी समिति से निकलने की इजाजत नही होनी चाहिए । बेशक, अगर सदस्य को मुआवजे से सतोष है तो उसके निकलने मे कोई कठिनाई नही होगी । कठिनाई तव आयगी जब वह अपनी जमीन वापस लेना चाहेगा । यह कल्पना की जा सकती है कि सहकारी समिति की किनारे की जमीन लौटा दी जाय, लेकिन वीच की जमीन नही लौटाई जा सकती । पर मैं कोई पक्का उत्तर नही दे सकता । हम कडा रुख नही अपनाना चाहते । जो आदमी हटना चाहे, उसे, जहांतक मुमकिन है, अच्छी-से-अच्छी शर्तो पर हटने दिया जाय । लेकिन उसे गडवडी फैलाने या शरारत करने की इजाजत नही दी जा सकती ।[1]

---

[1] अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, नई दिल्ली के भाषण से, १० मई १९५९

: १३ :

अधिक अन्न-उत्पादन—एकमात्र कसौटी

सहकारी खेती पर हमला कांग्रेस के तमाम उसूलों और कार्यक्रमो को, जो आज़ादी के बहुत पहले से चले आ रहे हैं, सीधी चुनौती है। कांग्रेस का जो लक्ष्य है, यानी समाजवादी ढंग का समाज, और आप चाहे तो उसे समाजवाद भी कह सकते है, उस सबके यह खिलाफ है। इसलिए हमला वास्तव मे व्यापक आधार पर है।

यह कहना बड़ा अजीब है कि सहकारी खेती सफल नही हो सकती और सहकारी खेती और सामूहिक खेती मे कोई फर्क नही है। यह आश्चर्यजनक है कि जब बात ऐसी नही है तो इस प्रकार की बात कैसे कही जा सकती है, खासकर तब, जबकि हमने यह घोषित किया है कि देश के हालात को देखते हुए हम यहा सामूहिक खेती के कतई खिलाफ हैं। जहां-तक मेरा सम्बन्ध है, बात यहा खत्म हो जाती है। लेकिन आलोचक कहे चले जा रहे हैं कि सहकारी खेती और सामूहिक खेती एक ही चीज है। इस प्रकार के तर्क या कुतर्क का जवाब देना मुश्किल है।

आलोचक यह भी कहते हैं कि सहकारी खेती दबाव के बिना शुरू नही की जा सकती। हमने यह साफ़ कहा है कि यह पूरे तौर पर स्वेच्छिक आन्दोलन है। अगर किसान चाहे

तो उसमे शामिल हो, न चाहे तो न हो। यही नही, हमने कहा है कि वे सहकारी सगठन से अलग होना चाहे तो अलग भी हो सकते है। फिर भी अगर लोग कहे जाते है कि यह लाजमी है तो मै क्या कर सकता हूं?

हमें यह याद रखना चाहिए कि सहकारी खेती ग्राम-सहकारिता का एक पहलू है। इस समय हमारा सारा जोर सेवा सहकारी सस्थाओ पर है। आप देखेगे कि सहकारिता के आलोचक यदा-कदा कहते है कि वे सेवा सहकारी समितियो के विरुद्ध नही है—यही आज हमारा खास कार्यक्रम है—बल्कि इस खतरनाक चीज सहकारी खेती के खिलाफ है, जो सामूहिक खेती का रूप ले लेगी और जो रसातल या नरक को ले जानेवाली है। मौजूदा हालत को समझे बिना, हमारा मकसद क्या है और हम किस उद्देश्य के लिए काम कर रहे है, यह सोचे बिना वे एक ऐसी चीज की चर्चा करते जा रहे है, जिसकी रचना उन्होंने खुद अपने दिमागो से कर ली है। बेशक, निजी तौर पर मै यह सोचता हूं कि सहकारी सयुक्त खेती मुनासिब है, क्योकि यह काम ज्यादा ऊचा, ज्यादा फायदेमद है। लेकिन महज मेरे चाहने से यह नही हो जानेवाला है। वह होगा तभी, जब किसान खुद उसे अपनाने को राजी होगे।

किसानों की प्रतिक्रिया

मेरा खयाल है कि आमतौर पर भारत मे किसान इस बारे में बहुत अनुकूल दृष्टि से विचार कर रहे है। मै उस दिन सोनीपत गया हुआ था। सारे पजाब के पंचो और सरपचो

की बडी कान्फ्रेस थी । शायद छहसौ या एक हजार से ज्यादा उनकी सख्या रही होगी । मैने उनसे कहा, "मैं आपके सामने कोरा भाषण नही देना चाहता । इसके बजाय मैं यह जानना चाहूँगा कि आप क्या महसूस करते है ?" मैने उन्हे बाते करने दी और उन्होने बाते की भी । मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि वे न सिर्फ दो दिन से सहकारी खेती की चर्चा कर रहे थे, बल्कि इस नतीजे पर पहुच चुके थे कि यह अच्छी चीज है और उसे उन्हे अपनाना चाहिए । मुझे उठकर उन्हे सयम से काम लेने के लिए कहना पडा । मैने कहा, "जल्दी न करे । खाली जोश काफी नही है । आपको पहले उसका प्रशिक्षण लेना होगा । पहले सारी बातो को समझ ले । धीरे चले ।" मुझे रफ्तार को धीमा करने का काम करना पड़ा, क्योकि मै नही चाहता कि महज दिखावे के लिए कुछ किया जाय । मै कामयाबी से चलनेवाले फार्म चाहता हू । उसके लिए प्रशिक्षण और प्रशिक्षित आदमियो की जरूरत होगी और हम उन्हे हजारो की तादाद मे प्रशिक्षित कर रहे है ।

जाहिर है कि कोई भी विचार-धारा, जो अन्न की पैदावार मे रुकावट डालती है, बुरी है । किसी भी विचार-धारा का पूरा मकसद यह होना चाहिए कि उसके नतीजे निकले । यह कोई निर्वाण प्राप्त करने जैसा आध्यात्मिक सवाल नही है, जिसकी कोई परीक्षा नही की जा सकती । यहा कसौटी यह है कि अधिक अन्न की पैदावार हो । यही सच्ची कसौटी है ।[1]

---

१ एक सम्वाददाता-सम्मेलन के अश, ७ जुलाई १९५९

: १४ :

कमज़ोर याददाश्त

सहकारिता के बारे में पिछले महीनो की चर्चा का अधिकाश भाग मददगार नही रहा, क्योंकि उसमे सिद्धान्त-वादिता और दलीलबाजी ज्यादा थी, खासतौर पर संयुक्त अथवा सहकारी खेती का सवाल कुछ लोगो के लिए चिन्ता का विषय रहा, हालाकि आज हमारे सामने यह पहला सवाल नहीं है।

कुछ लोग इस गलत धारणा के शिकार है कि इस समय ग्राम सहकारी समितियों और सहकारी खेती पर जो जोर दिया जा रहा है, यह कोई बिलकुल नई बात है, पिछली नीति को बदला जा रहा है। इस कुशका का कारण यही हो सकता है कि इन लोगों को पिछले सालों के घटना-क्रम का पता नही है।

सहकारिता की पूरी कल्पना राष्ट्रीय काग्रेस मे एक पीढी से या इससे भी ज्यादा समय से रमी हुई है। दर-असल, लम्बे समय पहले भारत मे सहकारी राष्ट्र का निर्माण काग्रेस का ध्येय निर्धारित किया गया था। सहकारी राष्ट्र के स्वरूप के सम्बन्ध मे शायद मतभेद हो सकता है, किन्तु गाधीजी ने अक्सर गावो मे सहकारिता के बारे मे और सह-कारी खेती के बारे मे भी लिखा और बोला है। पिछले समय

मे विनोबाजी ने भी ऐसा ही किया है।

लेकिन मामूली भाषणो और लेखो के अलावा काग्रेस की नीति काग्रेस के सन् १९४५, १९५१ और १९५७ के चुनाव-घोषणा-पत्रो मे निर्धारित की गई है। हर आदमी को यह हक हासिल है कि इस नीति से सहमत हो या असहमत हो, पर कहने का मतलब यह है कि यह नई नीति नही है, जिसे अचानक देश पर थोपा गया हो। यह उतनी ही पुरानी है, जितनी कि गाधीजी के नेतृत्व मे बनी काग्रेस, और इसे आम चुनावो के समय तीन बार मतदाताओ के सामने रखा गया है। यह अचरज की बात है कि लोगो की याददाश्त इतनी कमज़ोर है कि वे इसे भूल गये है।

हमारा तात्कालिक लक्ष्य भारत के सभी गावो मे सेवा सहकारी समितिया कायम करना है। मैं उम्मीद करता हू कि धीमे-धीमे भविष्य मे इसके फलस्वरूप सहकारी खेती शुरू होगी। लेकिन यह अगला कदम है। यह याद रखना होगा कि सहकारिता का मुख्य तत्त्व स्वेच्छिक सहयोग है। सहकारिता को ऊपर से नही थोपा जा सकता।

मै सहकारी सस्थाओ के लिए प्रशिक्षण की बुनियादी जरूरत पर जोर देता आ रहा हू। सहकारी सस्थाओ को चलाने के लिए जबतक प्रशिक्षित कार्यकर्ता नही होगे तबतक दुनिया-भर के जोश-खरोश से भी काम बननेवाला नही है। सिर्फ ऊची किस्म के शिक्षण की ही जरूरत नही है, बल्कि पचो और सरपचो को सीमित प्रशिक्षण भी देना होगा।

ऋण देने के लिए उपलब्ध साधनो की भी काफी चर्चा

है। कुदरतन यह जरूरी है, लेकिन मुझे पता है कि गुजरे जमाने मे उपलब्ध साधनो का भी पूरा इस्तेमाल नही हुआ। मै नही सोचता कि इस काम के लिए साधनो की वाकई कमी होगी। आज जरूरत इस बात की है कि ठीक ढग का प्रशासनिक तंत्र हो। यदि यह तत्र और प्रशिक्षित कार्यकर्ता उपलब्ध हो तो मुझे शक नही कि साधन भी उपलब्ध होगे। नकली सहकारी सस्थाए बनने या जालसाज आदमियो द्वारा सहकारिता के नाम का खुदगर्जी के लिए इस्तेमाल करने की वृत्ति रही है और बेशक, आगे फिर वैसा ही होगा। इससे सावधान रहना होगा।

मै उम्मीद करता हूं कि यह कान्फ्रेस कुछ बडे सवालों पर जोर देगी और आइदा काम के लिए मजबूत नीव रखेगी।[1]

---

१ मैसूर मे आयोजित राज्यो के सहकारी मन्त्रियो की कान्फ्रेस को सदेश, २८ जुलाई १९५९

· १५ ·

एकमात्र दृष्टिकोण

करीब एक चौथाई सदी पहले भारत मे ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त कृषि शाही कमीशन ने कहा था कि भारत मे सहकारिता के अलावा कृषि के लिए कोई भविष्य नही है। मै इस कथन से पूरी तरह सहमत हू। यह जाहिर ही है कि सहकारी तरीका न केवल खेती के लिए, बल्कि और कामो के लिए भी सही तरीका है। दूसरे देशो मे, चाहे वे पूजीवादी, समाजवादी या साम्यवादी हो, सहकारी आन्दोलन ने बडी प्रगति की है। मेरे खयाल से वक्त आ गया है जब भारत मे इस आन्दोलन को बढावा देने और आगे बढाने की पूरी कोशिश की जाय।

जैसाकि उसके नाम से ही जाहिर है, सहकारिता एक स्वेच्छिक प्रयास है। दबाव का कोई भी तत्त्व सहकारिता के वास्तविक स्वरूप को नष्ट कर देगा।

इस आन्दोलन से उसके सदस्यो को तो फायदा होता ही है, इसके अलावा वह श्रेष्ठतर समाज-सगठन का रूप है।[1]

---

१ अखिल भारतीय सहकारिता सप्ताह के लिए सदेश, ६ नवम्बर १९५९

: १६

सहकारी खेती

मैं मानता हू कि सहकारी खेती जाहिरा तौर पर भारत की जरूरतो को पूरा करेगी। जब मै भारत की जरूरतो की बात करता हू तो मै कोई सैद्धान्तिक प्रस्ताव पेश नही करता, क्योकि हर देश की जरूरतो का अलग से विचार करना होगा और हम कोई निश्चित नुस्खा लागू नही कर सकते। भारत मे जमीन की इकाइया बहुत छोटी है। एक एकड, दो एकड़ या इससे कुछ ज्यादा हो सकती है, लेकिन आमतौर पर एक एकड से कम ही होती है। एक या दो एकड का मालिक कोई वास्तविक प्रगति कर सकेगा, यह आशा नही की जा सकती। अगर कोई ऐसा कर लेता है तो वह बहुत चतुर आदमी होगा। लेकिन यह अलग विषय है। इसलिए यह लाजिमी हो जाता है कि छोटे किसान सहकारी तरीके पर संगठित हो और इस तरह कुछ हद तक बडे पैमाने की खेती और अधिक साधनों का फायदा उठाये।

जैसाकि सदन को पता है, यह टैगोर शताब्दी का साल है और मैं रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक भाषण पढ रहा था, जो उन्होने एक राजनैतिक कान्फ्रेस मे, बगाल मे, मेरे खयाल से सन् १९०७ या १९०८ मे, दिया था। शायद यह पहली और एकमात्र राजनैतिक कान्फ्रेस थी, जिसमे उन्होने

भाषण दिया। यह बंगाल की राजनैतिक कान्फ्रेंस थी और मुझे खुशी हुई और ताज्जुब हुआ कि उस भाषण में बंगाल के लिए और शेष भारत के लिए सहकारी खेती को अपनाने का दिल से अनुरोध किया गया है। उन्होने कहा, हमारे लिए यह युक्तियुक्त और अनिवार्य है कि हम सहकारी खेती को अपनाये। उनकी इसके पक्ष मे दलील यह थी कि भारत मे जमीन की इकाइया बहुत छोटी हैं। मै भी यही मानता हूं, लेकिन हम इस तरह आगे बढ रहे हैं कि हमे फिलहाल सेवा सहकारी समितियाँ कायम करने पर जोर देना चाहिए, कारण सवाल किसी काम को करने का फैसला करने का नही है। पहले लोगो को उस काम का तरीका सीखना होगा, यह सबसे जरूरी बात है। जहां प्रशिक्षण का अभाव था, सहकारी सस्थाए नाकामयाब हो गई। सेवा सहकारी सस्थाओं के लिए भी काफी शिक्षण और प्रशिक्षण की जरूरत होगी। यह पहला कदम है। अगर इसे कामयाबी से उठा लिया तो अगला कदम आसान हो जायगा।[1]

१ राज्य सभा मे तीसरी योजना पर दिये भाषण से, २९ अगस्त १९६१

: १७ :

आपसी आदान-प्रदान का तरीका

करीब छः दिन पहले मै बम्बई मे था और मुझे महाराष्ट्र कोआपरेटिव बैंक के स्वर्ण जयन्ती समारोह मे भाषण देने के लिए निमन्त्रित किया गया। कुछ तथ्यो से मै काफी प्रभावित हुआ। पहले, बैंक के विकास और प्रगति के इतिहास से। दूसरे, उसके कार्यकाल मे सरकारी आदमियो का उसके साथ इतना सम्बन्ध नही रहा, जितना सार्वजनिक लोगों का। मुझे सब आदमियो के नाम याद नही है, किन्तु एक नाम अच्छी तरह याद है और वह है श्री गोपालकृष्ण गोखले का। यह काम निश्चित रूप से गैर-सरकारी प्रवृत्ति के रूप में शुरू किया गया। बेशक, सरकार ने थोडी मदद दी, हालाकि देश की पुरानी अग्रेज सरकार ने बहुत बार उसकी मदद नही की या उसे नियन्त्रित करने की कोशिश की। मै इसपर जोर देना चाहता हूं कि सरकारी नियत्रण से ज्यादा नुकसानदेह दूसरी बात नही हो सकती। वह मौत को चुपटाने के समान है।

सहकारिता सरकारी नियंत्रण नही है। अगर कोई सरकारी नियत्रण है, अच्छा या बुरा तो वह सहकार नही होगा, और कुछ भले ही हो। हमे इस बारे मे बिल्कुल साफ होना चाहिए। अगर आप भारत की मौजूदा परिस्थितियों की पड़ताल करे तो आपको यह सचाई जाहिर हो जायगी। जहा

गैर-सरकारी लोगों ने पहल की और इस काम मे लगे, वहा आन्दोलन फला फूला है और जहा सरकार ने एक तरह से उसका पोषण किया वहा वह आगे नही वढा। आमतौर पर यह ठीक नही कि जुदा-जुदा राज्यो के काम की तुलना की जाय, लेकिन इस मौके पर अलग-अलग राज्यो की प्रगति का लेखा-जोखा करना लाभदायक होगा। सामुदायिक विकास-मंत्री ने इस विषय मे हमे कुछ बताया है। भारत के चार राज्य सहकारी आन्दोलन मे अगुआ है। यह कोई आकस्मिक चीज नही है, बल्कि उसके पीछे गुजरे जमाने का काम है। लोगो ने इसका निर्माण किया है, सरकार ने नही। मैं फिर कहता हू और बराबर कहता रहूगा कि मै सहकारी प्रमास के साथ सरकार के सम्बन्ध को नापसद करता हू। हां, सरकार रुपये-पैसे आदि से मदद कर सकती है।

राज्यों की तस्वीर

सहकारिता के क्षेत्र मे जिन चार राज्यो ने अच्छी प्रगति की है वे है—महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास और आध्र प्रदेश। उनका काम सारे देश के काम के मुकाबले करीब आधा होगा। दूसरी श्रेणी मे मैसूर और पजाव आते है, जिन्हे सहकारिता के क्षेत्र मे काफी प्रगतिशील राज्य कहा जा सकता है। तीसरी श्रेणी मे राजस्थान, उत्तर प्रदेश, केरल, मध्य प्रदेश और जम्मू तथा काश्मीर है, जो ऊपर बताये राज्यो से तो पीछे है, लेकिन कमोबेश सही दिशा मे जा रहे है। चौथी श्रेणी मे, जहातक सहकारी आन्दोलन का सम्बन्ध है, गति-रहित और स्थिर अथवा मरणशील राज्य है उडीसा, बिहार, पश्चिमी

बगाल और असम। इन राज्यो में प्रगति करने के बजाय यह आन्दोलन पिछड़ा है। इससे यह जाहिर होता है कि इन चार राज्यो में सहकारी आन्दोलन को ठीक तरह से नही समझा गया है या उसमे दिलचस्पी नही ली जा रही है। बेशक, उनमे कान्फ्रेंसे और भाषण होते होगे, लेकिन कोई काम नही हो रहा और आन्दोलन को समझा भी नही गया। यह इतना तकलीफदेह है कि शब्दो में बयान नही किया जा सकता। राज्यो की स्थिति मे जो यह अन्तर है, उससे हमें सोचने की प्रेरणा मिलनी चाहिए।

सभ्य समाज का प्रतीक

सहकारी आन्दोलन अनेक देशो में बहुत समय पहले निस्बतन सीमित पैमाने पर और सीमित उद्देश्यो से शुरू किया गया। हर देश में, चाहे वह साम्यवादी हो, समाजवादी या पूजीवादी, उसका बडा विकास हुआ है और हो रहा है, क्योकि उसने एक बड़ी जरूरत को पूरा किया है। अलग-अलग देशो में उसका गठन थोड़ा जुदा हो सकता है, लेकिन आन्दोलन की बुनियादी बाते सब जगह एक जैसी है। सहकारी संस्थाएं हर क्षेत्र में हैं—कृषि मे, उद्योग में, सेवाओं मे और बहुत-से दूसरे कामो मे वे है। शायद ही कोई ऐसी जगह होगी, जहां सहकारी भण्डार न हो, जो समाज को मुनासिब कीमतों पर चीजे मुहय्या करता है। कीमतो को नियन्त्रित करने का यह बहुत प्रभावशाली तरीका है। भारत मे कीमतों के कारण, खासकर अनाज की कीमतो और बंटवारे के कारण काफी परेशानी है। उसका जाहिरा इलाज सहकार है।

आप देखेगे कि जहा कही देश के किसी हिस्से या किसी जिले में सहकारी आन्दोलन का काफी विकास हुआ है, वहा कीमतो पर कही ज्यादा नियंत्रण रहा है। लेकिन इस पहलू पर यहा दिल्ली जैसे बडे शहर मे भी ज्यादा ध्यान नही दिया गया है। मुझे बताया गया है कि ऐसे छोटे सहकारी भण्डार है, जिन्हे आप कही उपबस्तियो मे दूरबीन से ही देख सकते है। इस हालत पर मुझे ताज्जुब होता है क्योकि आजकल सहकारी भण्डार सभ्य समाज की मामूली निशानी बन गये हैं।

सहकारिता कामो को कुशलता और किफायत से करने की विधि से कुछ और अधिक है। यह किफायत का न्यायोचित तरीका है। वह समानता लाता है और विषमता की बढोतरी को रोकता है। लेकिन वह इससे भी कुछ गहरा है। यह जिन्दगी का एक तरीका है। वह निश्चय ही जीवन का पूजीवादी तरीका नही है, वह सौ फीसदी समाजवादी तरीका भी नही है, तो भी पूजीवाद की निस्बत समाजवाद के भी कही ज्यादा निकट है। जो हो, यह जीवन का तरीका है और अगर हम उसका दायरा आर्थिक क्षेत्र से बढा सके, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार मे उसका प्रवेश करे तो यह आपसी आदान-प्रदान का तरीका हो सकता है। सहकार आपसी आदान-प्रदान है, आदान-प्रदान का एक तरीका है। वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र को बढाने का तरीका है। हालाकि हो सकता है कि यह शब्दावली बहुत ठीक न हो, लेकिन यह शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का एक तरीका है। अगर लोग बातो पर सहकारी ढग से विचार करे तो उनको लाजिमी तौर पर शान्ति के रास्ते पर जाना होगा, सघर्ष और युद्ध के रास्ते पर नही।

पुराने जमाने की प्रणाली

उन्नीसवी सदी और उसके आस-पास पूजीवाद ने प्रगतिशील देशों के आर्थिक उत्पादन मे उल्लेखनीय प्रगति की। हमें इन प्रगतियों की उपेक्षा नही करनी चाहिए। लेकिन यह सच है कि पूजीवादी समाज-व्यवस्था की बुनियाद मे तेज होड़, भयंकर अर्थलोलुपता और संग्रह-वृत्ति है। उसमे राष्ट्र और राज्य जितनी ज्यादा तरक्की करता है, उतनी ही ज्यादा राष्ट्रीय प्रतियोगिताएं बढ़ती है। दुनिया के मौजूदा हालात मे मेरे ख़याल से यह प्रणाली समय से पिछड़ी हुई हो गई है, क्योकि हम ऐसी मंजिल पर पहुच चुके है जब पूजीवादी तरीके से बिना एक दूसरे का गला काटे, बिना जग या जंग जैसी किसी चीज के बांटने के लिए कुछ ज्यादा बाकी नही बचा है। उस जमाने में जब दुनिया के ज्यादातर भागो का शोषण करने की गुजाइश थी, पूजीवादी व्यवस्था का विस्तार किया जा सकता था। किन्तु आज अगर हमे जिन्दा रहना है तो चाहे आदमी हो, कुनबा हो, देश हो या सारी दुनिया ही क्यो न हो, जीवन की समस्याओ के प्रति सहकारी दृष्टिकोण अधिकाधिक जरूरी होता जा रहा है, क्योकि आज हम दुनिया में एक-दूसरे के बहुत पास, आदमियो से भरे समाज मे ठीक उसी प्रकार रहते हैं, जैसे परिवार मे और उसमे सहकार करना पड़ता है।

तकनीकी प्रौढ़ता

अगर आप पूछे कि भारत मे हमारा लक्ष्य क्या है तो इस सवाल के कई जवाब है। एक जवाब तो यह है कि हम तकनीकी प्रौढ़ समाज बनाना चाहते है। अगर हम किसी भी

कारण से तकनीकी दृष्टि से पिछडी हालत मजूर करते हैं तो हमेशा के लिए ऐसा नही करते। मिसाल के लिए भारत मे हमे छोटे उद्योग, ग्राम-उद्योग रखने होगे, लेकिन मैं इन उद्योगो का तकनीकी पिछड़ापन स्वीकार नही करता। मैं हर चीज के पिछडेपन को नापसन्द करता हू, चाहे वह पिछडापन तकनीकी हो, दिमागी हो या शारीरिक। हमे कार्यकुशल, योग्य आदमी चाहिए और अगर आपको ग्रामोद्योगो को रखना है—उन्हे इस देश मे सामाजिक और दूसरे कारणो से अवश्य रखना होगा, तो इन ग्रामोद्योगो को भी ग्राम की सतह पर तकनीकी दृष्टि से, जहां तक मुमकिन हो उन्नत होना चाहिए। मैं ऐसा इसलिए कहता हू कि कुछ लोग पिछडेपन को भी एक अच्छा गुण समझते जान पडते हैं। यह सद्गुण नही, बेवकूफी है। मैं बेवकूफी को नापसन्द करता हू। क्या किसी काम को दस हजार या पांच हजार सालों पहले जिस तरह किया जाता था, उसी तरह करने मे कोई सद्गुण है ?

अगर जमीन की बहुत छोटी इकाइयाँ है तो सहकारी समितियो और सयुक्त खेती को अपनाये बिना इस देश मे तकनीकी दृष्टि से खेती की प्रगति नही हो सकती। मैं कल्पना कर सकता हूं कि एक बडे जमीदार के एक बड़े कृषि-फार्म पर तकनीकी सुधार हो सकते है, लेकिन यह बुनियाद सामाजिक दृष्टि से बुरी है और सामाजिक समस्याएं पैदा करती है। यही कारण है कि हमने जमीदारों को खत्म कर दिया है। लेकिन उनकी जगह हमे सहकारी संस्थाएं खड़ी करनी होंगी, ताकि जमीदारी-प्रणाली की बुराई से दूर रहते हुए निस्बतन बड़े साधनों का लाभ उठाया जा सके।

उद्योग और जन-साधारण का विकास

कुछ राज्य केन्द्रीय सरकार से माग करते है कि उनके यहा बड़े उद्योग कायम किये जायं। वे अपने यहां बडे-बड़े कल-कारखाने कायम करने को उत्सुक है। उनकी इस इच्छा की मै आलोचना नही करता, उन्हे दोष भी नही देता, किन्तु यह सचाई है कि देश का औद्योगिक दृष्टि से आगे बढा हुआ एक राज्य फी आदमी औसत आय की दृष्टि से सबसे पिछड़े राज्यों में है। बिहार को लीजिये। सहकारिता के क्षेत्र मे बिहार अन्य राज्यो से बहुत पीछे है, हालाकि वह देश का अत्यन्त औद्योगिक भाग है। वहा उद्योगों पर खूब रुपया खर्च किया जा रहा है और विशाल योजनाएं अमल मे लाई जा रही है। इसके विपरीत, पजाब में अक्सर बड़े उद्योग नही है। लेकिन वह देश का बहुत खुशहाल राज्य है और वहां निजी आमदनी की सतह सबसे ऊची है। कारण, उसकी कृषि की हालत मामूली तौर पर अच्छी है। वह खूब मेहनत करता है, उसमें छोटे-छोटे उद्योग है, ज्यादातर लोग डटकर काम करते है और इससे दरअसल आर्थिक प्रणाली को ताकत मिलती है। अगर आप समझते है कि बड़े कल-कारखानों से अचानक अन्तर पड़ जायगा तो आप गलती करते है। बड़े कारखाने का महत्व यह है कि वह बहुत सारे छोटे कारखानों, छोटे उद्योगों को जन्म देता है।

यह जानना दिलचस्प होगा कि जमीदारी-प्रथा के नीचे रहा हुआ देश का ज्यादातर हिस्सा ऐसी हर बात मे पीछे है, जिसमें सबकी कोशिश और सूझबूझ की आवश्यकता होती है। बेशक, सहकारिता मे सबके प्रयास, गतिशीलता और

पहल की जरूरत होती है। छोटे उद्योगो वगैरा मे भी लोगो की पहल जरूरी है। उनमे आपको ऊंचे दर्जे के लोग, योग्य वैज्ञानिक और प्रोफेसर मिलेगे, लेकिन जमीदारी-प्रथा मे जन-साधारण पिछड़ा हुआ है। मेरे खयाल से उन्हे जमीदारी-प्रथा ने सैकड़ो सालो से पीड़ित किया है। बेशक, अब हमने उन्हे उससे छुटकारा दे दिया है, लेकिन सही छुटकारा तो तब होगा, जब उनके जीवन मे वह वसन्त आयगा, जो लोगो मे नया प्राण भर देता है। मेरे खयाल से इस पंचायतराज के धन्धे का मुख्य उद्देश्य वह वसन्त लाना है, जो हमारे देहातियो को आत्मनिर्भरता और शक्ति लौटायगा, जिन्हे जमीदारी-प्रथा और कुछ हद तक अन्य बातो ने इतने लम्बे समय से वचित रखा था। अगर आप पचायतीराज के साथ सहकारिता को जोड़ दे तो आप लोगो को ताकत बढानेवाली जरूरी दवा दे सकेगे, बशर्ते कि दोनो प्रयोग अच्छी तरह से चले।

हमारे लिए यह जरूरी है कि हम कुछ आकड़ो और तथ्यो के आधार पर देश की तरक्की का माप करे। मिसाल के लिए देखे कि कितने उद्योग कायम हुए है। लेकिन हमको देखना यह है कि जन-साधारण की हालत मे कितना सुधार हुआ है। देश के ४४ करोड लोगो का विकास होना है और उनके पास पचायती राज, सहकारी संस्थाओ और इस प्रकार के दूसरे आन्दोलनो के जरिए पहुचा जा सकेगा। मैने कही पढा है कि पंचायती राज ने सारे देश मे कोई १ करोड पच पैदा कर दिये है। यह इतनी बडी सख्या है कि मेरे पावतले की मिट्टी ही खिसक गई। वास्तव मे यह सख्या २५ लाख है, फिर भी २५ लाख आदमियो के हाथो मे अधिकार और जिम्मेदारी का

पहुचना बहुत बड़ी बात है।

मुझे उम्मीद है कि मैने सहकारिता के बारे में अपनी दृढ भावनाओ से आपको परिचित कर दिया है। मेरे खयाल से यह हमारी कृषि के लिए, उद्योगो के लिए और इससे भी अधिक हमारी सारी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन-दृष्टि के लिए बुनियादी चीज है। बेशक, सरकार उसमें मदद देती है, पर यह सरकार-निर्देशित दिखावा नही है। ऐसा नही है कि बड़े-बड़े दफ़्तरो मे बड़े-बड़े अफसर बैठे है और बड़े चपरासी उन दफ्तरों के बाहर खडे है और सारी चीज को संचालित और नियन्त्रित कर रहे है। यह बिल्कुल आपत्तिजनक होगा। सहकारिता में आपसी आदान-प्रदान है, खानपान और भाई-चारे की भावना है—यह भावना कि कोई भी मामूली किसान बड़े अफसरों से डरे बिना उसमे भाग ले सकता है।[1]

---

१ नई दिल्ली मे आयोजित राज्यो के सहकारी मन्त्रियो के सम्मेलन मे उद्घाटन भाषण से, ३० अक्तूबर १९६१

: १८ :

अनुभव से सीखना

इन चुनावो मे सयुक्त खेती के सवाल का खूब फायदा उठाया गया और वह भी काफी गलत तरीके से । लोग कहते फिरे, "तुम्हारी जमीने तुमसे छीन ली जायगी," हालाकि यह बात बिल्कुल गलत है । मेरी यह दृढ मान्यता है कि भारत के आज के हालात मे सयुक्त खेती मुनासिब है । उससे पैदावार बढेगी और किसानो को फायदा होगा। हमने यह भी कहा कि बिना किसानो की सहमति के सयुक्त खेती नही होगी, किसान अगर पसन्द न करे तो सयुक्त खेती से दो-तीन साल बाद अलग हो सकेगे और जमीन की मालिकी नही छीनी जायगी ।

जैसाकि मैंने दूसरी जगह कहा है, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बगाल प्रान्तीय कान्फ्रेंस के अध्यक्षपद से सयुक्त खेती की हिमायत की थी। क्यो ? उन्हे राजनैतिक समस्याओ, समाज-वाद, साम्यवाद या ऐसी और किसी चीज से सरोकार नही था । उन्होने सयुक्त खेती का इसलिए समर्थन किया था कि बगाल के हालात को देखते हुए उसीके जरिए प्रगति की जा सकती है । इससे बड़ी बात यह कि उन्होने अपनी जमीदारी मे सयुक्त खेती शुरू की । फिर भी कुछ लोगो की यह गलत धारणा है कि ये कुछ नई कल्पनाए है, किसी भयकर स्थान से आई हैं और भारत की पवित्र भूमि को भ्रष्ट कर देगी ।

हम कुछ निश्चित विचार लेकर आगे बढ रहे है। मै यह कहूगा कि राष्ट्रपति ने ठीक ही कहा है कि इन चुनावों ने जाहिर कर दिया है कि जनता न सिर्फ हमारे व्यापक विचारों को, जिनका हम अनुसरण करना चाहते है, स्वीकार करती है, बल्कि उनसे पूरी तरह सहमत है और उनको बढावा देना चाहती है। दरअसल ज्यादातर आलोचना विचारो की नही, बल्कि इस बात की थी कि उन विचारों पर अमल करने मे देरी क्यो की जा रही है। हमारा रुख कडा और कट्टर सिद्धान्तवादी नही है। हमारे लक्ष्य के बारे मे और उसे सिद्ध करने के तरीके के बारे मे हमारे कुछ बुनियादी विचार है, किन्तु साथ ही हम व्यावहारिक दृष्टि रखते है। हम अनुभव से सीखते है और कष्टकर कदम उठाते हुए आगे बढते है।

कोई भी सरकार, भारत मे या और किसी जगह जनता की मदद के बिना आगे नही बढ सकती। केवल सरकारी एजेसी के जरिए इन बडो योजनाओ पर अमल नही किया जा सकता। हमे जनता से काफी मदद मिली है। साथ ही, हमको युगो की विरासत—इस देश की जडता और उससे सम्बन्धित बातो का सामना करना है।

सदन को याद होगा कि जब कुछ ग्रह एक-दूसरे के नजदीक आये थे तो सारे देश मे कितनी भारी उत्तेजना जाहिर की गई थी और उस उत्तेजना को फैलाने मे बहुत-से दलो के अनेक लोगो ने, जिनमे मेरा ख्याल है, कांग्रेस पार्टी के लोग भी शामिल थे, योग दिया था। इस अष्टग्रह के प्रकोप को शान्त करने के नाम पर काफी रुपया, शक्ति और समय खर्च किये गए। यह वह हालत है, जिनका हम मुकाबला कर रहे

है। हम वास्तव मे अन्धविश्वास से लड रहे है, चाहे वह कही भी जाहिर हो। कोई घटना होगी या नही, इससे मैं इन्कार नही कर रहा हूं, लेकिन मै अन्धविश्वास का शिकार नही बनूगा। मुझे और मेरी पार्टी को वोट मिले या न मिले, कुछ बातो पर हमे डटे रहना होगा। हमे राष्ट्र की समस्याओ के प्रति युक्तियुक्त, तर्कसगत और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना होगा।[1]

---

१ लोकसभा मे राष्ट्रपति के भाषण पर हुई बहस के उत्तर से, १९ मार्च १९६२

: १९ :

सेवा सहकारी समितियां

हमने कृषि पर बहुत ज्यादा जोर दिया है और उसमें सुधार दिखाई देने लगा है। सुधार हो रहा है, लेकिन उसकी गति ज्यादा तेज होनी चाहिए थी। हर सामुदायिक विकास खण्ड और पचायत को यह महसूस करना चाहिए कि कृषि का विकास उनका काम है, कारण उसीपर हर प्रकार की खुशहाली निर्भर करती है। कृषि मे भी सहकारी समितियां शामिल है, क्योकि मुझे पूरा यकीन है कि उनके बिना गांव तरक्की नही कर सकता। हमने सहकारी खेती की चर्चा की है और कुल मिलाकर मै देखता हूं कि सहकारी फार्मो का भी काफी ठीक-ठीक विकास हुआ है, हालाकि उनकी सतह छोटी रही है, कारण उनपर हमने काफी जोर नही दिया। लेकिन मैं नही चाहता कि आप उनपर खास तौर पर जोर देते फिरे। हम हर जगह, जहां भी मुमकिन हो और लोग रजामन्द हों, सेवा सहकारी समितियां कायम करे। अगर आप एकदम सहकारी खेती शुरू करेगे तो वह नाकामयाव होगी। आपको हमेशा भारत के हालात पर निगाह रखनी चाहिए। आप उसूल की बुनियाद पर फैसला न करे कि चूकि एक बात रूस, अथवा अमरीका या इंगलैण्ड के लिए अच्छी है, इसलिए भारत के लिए भी अच्छी होगी। यह उसूल लागू नहीं होता।

और अमरीका ऐसे देश है, जिनकी आबादी कम है और जिनके पास जमीन के विशाल क्षेत्र पडे है। यहा भारत मे मर्द और औरतो की तादाद बहुत ज्यादा है।

मैने पिछले साल रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कुछ भाषण पढे थे, जो उन्होने बहुत समय पहले, सन् १९११ मे दिये थे। उन्होने बगाल मे सहकारी खेती अपनाने की जोरदार वकालत की थी। इसका कारण यह है कि बगाल की परिस्थितियो मे, जहा जमीन की छोटी बँटी हुई इकाइयां है, वहा सहकारी खेती के लिए गुजाइश है। वह राजनैतिक दृष्टिकोण नही था, आज की तरह उस समय उसके खिलाफ कोई विवाद खडा नही हुआ। वह मामूली तौर पर समझदारी-भरा दृष्टिकोण था और मेरा खयाल है कि उन्होने अपने फार्म मे उसे लागू किया। इसके बावजूद, पहला कदम सेवा सहकारी समितियो का है।[1]

●

---

१ नई दिल्ली मे आयोजित राज्यो के सामुदायिक विकास और पचायत राज मन्त्रियो के वार्षिक सम्मेलन मे दिये गए भाषण के अश। ३ अगस्त १९६२